श्रीकृष्ण
वर्ष ५, अं. १
सन्देश
वर्ष : ५ • अंक : १

पठनीय !

संग्रहणीय !!

स्वर्गीय जुगलकिशोरजी बिरला

की

प्रथम पुण्यतिथिपर

प्रकाशित

# श्रद्धांजलि-ग्रन्थ

देश-विदेशके मनीषियों द्वारा सँजोयी गयी अनुपम, [illegible]क विचार सामग्री।

श्रीकृष्ण-सन्देशके ग्राहकोंको केवल लागत मात्रपर उपलब्ध है।

प्रकाशक

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ

केशवदेव कटरा, मथुरा

# श्रीकृष्ण-सन्देश

धर्म, अध्यात्म, साहित्य एवं संस्कृति-प्रधान मासिक

★

प्रवर्तक
ब्रह्मलीन श्री जुगलकिशोर बिरला




वर्ष : ५ अङ्क : १
अगस्त, १९६९

वार्षिक शुल्क : ७.००
आजीवन शुल्क : १५१.००

प्रकाशक :
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा
दूरभाष : ३३८

# विषय-सूची

# श्रीकृष्ण-जन्मस्थान : प्रेरणाप्रद

## प्रत्यक्षदर्शियोंके उद्गार

## ( अगस्त १९६९ )

भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मभूमिका दर्शन करके हमें परम आनन्द प्राप्त हुआ; साथ ही, यह देखकर कि आज भी आर्यावर्तके लोग धर्मके पावन पथपर चल रहे हैं, हृदयको बड़ी शान्ति मिली।

श्री १०८ श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ
स्वामी परिव्राजकाचार्य
सिवनीमठ चांपा
विलासपुर जूनापीठ ( वाराणसी )

भगवान् श्रीकृष्णकी प्राकटच-भूमिपर जो निर्माणकार्य हो रहा है, वह बहुत ही प्रेरणादायक है। यहाँकी सुव्यवस्था देखकर बड़ी खुशी हुई।

देवजी भीमजी
मूलजी जेठा मारकेट
चन्द्र चौक, दूसरी गली
बम्बई नं० २

भगवान् श्रीकृष्णका जन्मस्थान एक चमत्कारी स्थल है। यहाँके मन्दिरोंपर विधर्मियों द्वारा वारंवार आक्रमण हुआ, किन्तु इसका प्रभाव अदम्य बना रहा। एक मन्दिर टूटा तो दूसरा और भी नयी शान-बानके साथ बनकर तैयार हो गया। वर्तमान समयमें जो भागवत-भवन और अतिथिभवन आदिका निर्माण हो रहा है तथा जो अन्यान्य भव्य भवन यहाँ निर्मित हो चुके हैं, वे सब इस स्थानकी महत्ताके अनुरूप हैं। इससे यहाँकी भव्यता सहस्रगुनी बढ़ जायगी—इसमें संदेह नहीं है। यह नव निर्माण भारतीय संस्कृति, धर्म तथा सभ्यताका उत्तम प्रतीक तो है ही, भारतवासियोंकी भगवान्के प्रति अविचल श्रद्धा, अटूट भक्ति, सुदृढ विश्वास एवं अनुपम उत्साहका भी परिचायक है। परमात्मा इस संस्थानको उत्तरोत्तर प्रगतिशील एवं अपने उद्देश्यमें सफल बनायें—यह हमारी शुभ कामना है।

दुर्गाशंकर आचार्य
विधिसचिव एवं विधिनिदेशक
जयपुर ( राजस्थान )

आज हम ५७० युवक गुजरातसे आये और श्रीकृष्ण भगवान्के जन्मस्थानका दर्शन करके कृतार्थ हुए। यहाँकी स्वच्छताका हमारे मनपर बहुत प्रभाव पड़ा है। ऐसे पुण्य स्थानमें यह्र सतत अपेक्षित है।

दिनेश शंकर
मंत्री, गुजरात युवक कांग्रेस
अहमदावाद

मथुरा नगरमें श्रीकृष्ण-जन्मस्थानमें हो रहे निर्माणकी विशालता अद्वितीय है। मुझे व्रज-मण्डलकी इस पावन नगरीमें तीन साल सेवाका अवसर मिला, इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। यहांके मन्दिरमें भगवान्का दर्शन करके मुझे बहुत ही सुख एवं शान्तिकी अनुभूति हुई। यहांके प्रवन्धक भी बहुत ही कर्तव्यनिष्ठ एवं लगनशील हैं। मेरे देखते-देखते भागवत-भवनका बहुत भाग वन चुका है।

विनोद-कुमार तिवारी
अधिशासी अधिकारी
नगरपालिका मथुरा

We are very happy to have come to Mathura & specially to this memorable place.

| | | | |
|---|---|---|---|
| Verena | Staubli | Zurich | Switzerland |
| Tiudi | Wisme | ,, | ,, |
| Erika | Lang | ,, | ,, |
| Vreni | Dressler | Basel | ,, |
| Pia | Orlamdini | Birsffden | ,, |

An expression of good wishes to the people of India.

**Enid Danis**
3 Moveller Rd. Chilton Gardens
Sydney, Australia

We have travell from Bangkok to Visit Birth place of Lord Krishna & we are very much impressed We hope we will have a chance to come again when the new temple finish.

**Yong-Youth Caanyont pathanakul**
19-21 Gol Vichan
Silom Road
Bangkok, Thailand.

On behalf of all the Yatriks of Bhartiya Vidya Bhavan's Samskritik Vikas Yatra No. 11. I record our gratitudes to the management of this temple for the very clean & inspiring manner. It is kept consistent with its sanctity.

**Justice E. Venkatesam**
Judge High Court of Andhra Pradesh
Hyderabad.

One of the most important places in Mathura which keeps it alive right round the year. Our Hindu Religion & Culture glorified thusby.

**V. Parth Sarthi**
Collector of Central Excise, Kanpur

The foundation of this temple is the revival of Indian's great culture & a source of inspiration to the millions of devoties who belive in Lord Krishna of His preachings. I pray & hope that this would lay down foundation for a society based on Niskam krama & sacrifice for higher causes based on Lord's teachings.

**Dr. P. L. Rawat**
Lucknow University.

It has been a great privilege and fortune to have visited the birth place of Sri Krishna, which is inspiring indeed. The completion of the new buildings should be an added attraction to the pilgrims.

**C. V. Nair**
Assist. Traffic Supdt.
S. Railway.
Cochin ( Keral )

☆

श्रीहरिः

## 'श्रीकृष्ण-सन्देश'के उद्देश्य तथा नियम

**उद्देश्य**—धर्म, अध्यात्म, भक्ति, साहित्य एवं संस्कृति-सम्बन्धी लेखों द्वारा जनताको सुपथपर चलनेकी प्रेरणा देना और जनमानसमें सदाचार, सद्विचार, राष्ट्रप्रेम, आस्तिकता, समाजसेवा, सर्वाङ्गीण समुन्नति तथा युगके अनुरूप कर्तव्यबोधको जाग्रत् करना 'श्रीकृष्ण-सन्देश' का शुभ उद्देश्य है।

**नियम**—● उद्देश्यमें कथित विषयोंसे संबद्ध श्रुति, स्मृति, पुराण आदिके अविरुद्ध तथा आक्षेपरहित एवं लोककल्याणमें सहायक लेख ही इस पत्रिकामें प्रकाशित होते हैं। लेखोंमें काट-छाँट, परिवर्तन-परिवर्धन आदि करने अथवा उन्हें छापने, न छापनेका संपूर्ण अधिकार सम्पादकको है। अस्वीकृत लेख विना माँगे नहीं लौटाये जाते। वापसीके लिए टिकट भेजना अनिवार्य है। लेखमें प्रकाशित विचारके लिए लेखक ही उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

लेखक उद्देश्यमें निर्दिष्ट विषयपर ही उत्तम विचारपूर्ण लेख भेजें। लेख स्वच्छ और सुपाठ्य अक्षरोंमें कागजके एक ही पृष्ठपर बायें हासिया छोड़कर लिखा होना चाहिए। लेखका कलेवर अधिक बड़ा न रहे। सामग्री सुन्दर, सामयिक तथा प्रेरणाप्रद हो। लेख सम्पादक—'श्रीकृष्ण-सन्देश' रू० नं० ६, कैलगढ़ कालोनी, जगतगंज-वाराणसीके पतेपर भेजें।

● श्रीकृष्ण-सन्देश अगस्त माससे प्रारम्भ होकर प्रत्येक मासकी पहली तारीखको प्रकाशित होता है, इसका वार्षिक मूल्य ७) है। जो लोग एक सौ इक्यावन रुपये एक साथ एक बार जमा कर देते हैं, वे इसके आजीवन ग्राहक माने जाते हैं। उन्हें उसी चंदेमें उनके जीवन भर श्रीकृष्ण-संदेश मिलता रहेगा।

ग्राहकोंको अपना नाम पता सुस्पष्ट लिखना चाहिए। ७) चंदा मनिआर्डर द्वारा अग्रिम भेजकर ग्राहक बनना चाहिए। वी० पी० द्वारा अंक जानेमें अनावश्यक विलम्ब तथा व्यय होता है।

**विज्ञापन**—● इसमें उत्तमोत्तम समाजोपयोगी वस्तुओंका ही विज्ञापन दिया जाता है। अश्लील, जादू-टोने आदि तथा मादक द्रव्योंके विज्ञापन नहीं छपते। विज्ञापन पूरे विशेष पृष्ठपर छपनेके लिए ५००) रुपये तथा साधारण पृष्ठपर छपनेके लिए ३००) रुपये भेजना अनिवार्य है।

पत्र-व्यवहारका पता :
व्यवस्थापक—'श्रीकृष्ण-सन्देश'
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
मथुरा

# श्रीकृष्ण-सन्देश

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

वर्ष : ५ ] मथुरा, अगस्त १९६९ [ अङ्क : १


## समझो मेरे स्वरूप और स्वभावको

★

मैं समस्त यज्ञोंका भोक्ता और स्वामी हूँ। यज्ञ या परोपकारकी भावनासे जो भी सत्कर्म किये जाते हैं, उनसे मुझे ही तृप्ति मिलती है, मैं ही उनका स्वामी—उन कर्मोंका साक्षी एवं उनके फल प्रदान करनेवाला हूँ। यदि कहो, यज्ञ और तपके भोक्ता तो परमेश्वर हैं तो ठीक है, वह परमेश्वर मैं ही हूँ। मैं ही सम्पूर्ण लोकोंका महामहेश्वर हूँ। फिर भी मुझसे भयभीत होनेकी आवश्यकता नहीं हैं; क्योंकि मैं समस्त भूतों—प्राणियोंका सुहृद्—अकारण हितैषी हूँ, मित्र हूँ। यदि इस रूपमें तुम मुझे जान लो, समझ लो तो जानते हो क्या होगा ? तुम्हारे सारे पाप-ताप, शोक-चिन्ता, दुःख-विषाद तत्काल दूर हो जायँगे तुम्हें परम शान्ति मिल जायगी। तुम आनन्द-सुधा-सागरमें गोते लगाने लगोगे, सर्वलोकमहेश्वर जिसका मित्र हो हितैषी हो, उसको चिन्ता किस बात की ? इस मान्यताकी एक ही पहचान है, किसी भी लौकिक परिस्थितिमें परम शान्त परम प्रसन्न रहना। जो अशान्त और दुखी रहता है, वह मुझे अपना मित्र नहीं मानता अथवा मेरे ऊपरसे उसका विश्वास उठ गया है। यही उसकी मूढता या दुर्भाग्य है।

विश्वास करो, मुझसे बढ़कर या मुझसे भिन्न कोई दूसरी वस्तु है ही नहीं। यह सारा जगत् मुझमें उसी तरह पिरोया हुआ है; जैसे सूतमें मनके। सूतकी मालामें मनका भी सूतका ही हो तो वहाँ कहने मात्रके लिए सूत और मनका अलग-अलग है; वास्तवमें सूत और मनके

सब एक ही तत्त्व हैं। इसी तरह यह जगत् और मैं एक ही तत्त्व हैं। जलमें रस, सूर्य और चन्द्रमामें प्रभा, वेदोंमें प्रणव, आकाशमें शब्द तथा मनुष्योंमें पुरुषार्थ भी मैं ही हूँ। मैं ही पृथिवीमें पावन गन्ध हूँ, अग्निमें तेज हूँ, सम्पूर्ण भूतोंमें जीवनी शक्ति तथा तपस्वी जनोंमें तप हूँ। बलवानोंका काम—रागशून्य बल तथा धर्मानुकूल काम भी मैं ही हूँ। समस्त सात्त्विक, राजस और तामस भाव मुझसे ही प्रकट हुए हैं, फिर भी मैं उनमें नही हूँ, किन्तु वे मुझमें ही हैं। ये त्रिगुणमय भाव मेरी दैवी मायाके स्वरूप हैं, इनसे मोहित जगत् मेरे मायातीत स्वरूपको नहीं जानता। मेरी माया यद्यपि दुर्लङ्घ्य है तथापि जो मेरी शरणमें आ जाता है; वह इस मायाके सागरसे पार हो जाता है।

क्रतु, यज्ञ, स्वधा, औषध, मन्त्र, घृत, अग्नि और आहुति भी मैं ही हूँ। मैं ही इस जगत्का पिता, माता, और पितामह हूँ। मैं ही सबकी गति, भर्ता, प्रभु, साक्षी, निवास, शरण, सुहृद्, प्रभव, प्रलय, स्थान, निधान और अक्षय बीज हूँ। मृत्यु और अमरता सत्ता और असत्ता सब मेरे ही स्वरूप हैं। अब मेरा स्वभाव सुन लो—जो अनन्यभावसे मेरा ही चिन्तन करते हैं, नित्य मेरी ही उपासनामें संलग्न हैं, उनके योग-क्षेमका भार मैं स्वयं ही ढोता हूँ। जो भक्ति-भावसे पत्र, पुष्प, फल और जल भी मुझे अर्पित करता है उस शुद्धात्माके उस प्रेमोपहारको मैं बड़ी चाहसे खाता हूँ। यद्यपि मैं सब प्राणियोंमें समभाव रखता हूँ। कोई भी मेरा द्वेष-पात्र या प्रीतिपात्र नहीं है; तथापि जो भक्तिभावसे मुझे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं उनमें हूँ। कोई कितना ही दुराचारी क्यों न रहा हो, यदि अनन्य भावसे मेरा भजन करने लगा है तो उसे साधु ही मानना चाहिए; क्योंकि उसने उत्तम निश्चय किया है; वह शीघ्र धर्मात्मा होगा और सनातन शान्ति प्राप्त कर लेगा। मेरे भक्तका कभी नाश नहीं हो सकता। वह लक्ष्य-सिद्धि से कदापि वञ्चित नहीं रहेगा। पापयोनिके जीव भी मेरी शरणमें आ जाँय तो वे भी परम गतिके भागी हो जाते हैं। यह संसार या शरीर अनित्य है, असुख है, यहाँ नित्य सुख पाना चाहो तो मेरा भजन करो। भक्तपरवशता मेरा स्वभाव है।

जो मुझे ही अपना जीवन-सर्वस्व मानकर केवल मेरी ही समाराधनामें रत रहते हुए अपनी सारी कर्मराशि मुझे सौंप देते हैं, जिनके मनका योग मेरे सिवा अन्यत्र कदापि नहीं होता, जो अनन्य चिन्तन पूर्वक मेरी उपासना करते हैं, नित्य निरन्तर मुझमें ही मन लगाये रखनेवाले उन अनन्य भक्तोंका मैं अविलम्ब उद्धार करता हूँ, उन्हें जन्म-मृत्युके अपार सागरमें कदापि डूबने नहीं देता। अतः एक ही काम करो, अपना मन अपनी बुद्धि सदाके लिए मुझमें ही लगा दो। फिर तो बेड़ा पार है। तुम मुझमें ही निवास करोगे, मेरी ही गोदमें समोद क्रीड़ा करते रहोगे; इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

# नये वर्षका नया संदेश

●

अगस्त मासमे 'श्रीकृष्णसन्देश'के नये वर्षका आरम्भ होता है। जुलाईमें इसका चौथा वर्ष पूरा हुआ है और एक अगस्त सन् १९६९ से इसने पाँचवें वर्षमें प्रवेश किया है। अतीत वर्षोंमें अनेक कठिनाइयोंके बीचसे गुजरता हुआ 'श्रीकृष्णसन्देश' उत्तरोत्तर प्रगतिके पथपर अग्रसर होता आया है और भगवान् श्रीकृष्णकी असीम अनुकम्पासे इसके समस्त गत्यवरोध दूर होते गये हैं, यह प्रसन्नताकी बात है। इस नूतन वर्षमें 'श्रीकृष्णसन्देश' अपने ग्राहकों एवं पाठक-पाठिकाओंको अपनी शुभकामनाएँ अर्पित करता है और उन्हें असत्से सत्की ओर तिमिरसे प्रकाशकी ओर तथा मृत्युके बन्धनसे मुक्त होकर अमृतत्वकी ओर अग्रसर होनेके लिए प्रेरणा देता है। उत्थान, जागरण, शौर्य, उत्साह, सदाचार, सद्विचार, पुरुषार्थपरायणता, आस्तिकता, राष्ट्रप्रेम, हिन्दुत्वकी रक्षा, गोधन-संवर्धन तथा निरन्तर श्रीकृष्ण-स्मरण—यही 'श्रीकृष्णसंदेश'का संदेश है। जहाँ धर्म अथवा श्रीकृष्णकी स्मृति है, वहाँ श्रीकृष्ण हैं और जहाँ श्रीकृष्ण हैं वहीं श्रीदेवीका दिव्य विलास, विजयका उद्घोष और कभी विफल न होनेवाली ध्रुवा नीति है।

हमें आध्यात्मिक और आधिभौतिक दोनों ही दृष्टियोंसे मानव समाजको समुन्नत बनानेके लिए दृढ़ संकल्प लेना और सतत प्रयत्नशील होना है। इसके लिए मन-बुद्धिके वातायनको खुला रखना होगा। उन संकीर्णताओं और दोषपूर्ण परम्पराओंसे ऊपर उठना होगा, जो हमारे सर्वाङ्गीण विकासमें बाधक हो रही हैं। हम अतीतके गौरवका आदर करते हुए भी वर्तमान कालकी वैज्ञानिक उपलब्धियोंकी उपेक्षा नहीं कर सकते। कभी समुद्रयात्रा निषिद्ध समझी जाती थी, किन्तु आज वह परम आवश्यक हो गयी है। वैज्ञानिक उपलब्धियोंने इस समय दुनियाकी भौगोलिक सीमाओंको अत्यन्त संकुचित बना दिया है। हम कुछ ही सप्ताहमें समस्त संसारका सर्वेक्षण करके लौट सकते हैं। राकेटके इस युगमें असंभव भी संभव होता-सा दिखायी देने लगा है। जो चन्द्रमा अबतक केवल कवियोंकी कान्तकल्पनाका आधार या केन्द्र माना जाता था, उसका धरातल अब मानवीय चरणोंसे आक्रान्त होना चाहता है। अमेरिकाके अपोला ८, ९ और १० की उड़ानोंने सब प्रकारके परीक्षण करके चन्द्रलोकमें मानवके उतरनेकी संभावनाको संशयहीन बना दिया है। अब अपोला ११ उड़नेकी तैयारी कर रहा है।

ऐसे समयमें हमें अपने रहन-सहन, विचार-व्यवहारको अत्यन्त उत्कृष्ट तथा उदार बनाना होगा। हम संकीर्ण मान्यताओंके कठघरेमें बंद नहीं रह सकते। दूसरोंको आगे बढ़ते देखकर भी हम स्वयं मौन होकर बैठे रहें, यह अकर्मण्यता, या उद्यमहीनता अब सहनके योग्य नहीं है। भारतवर्षको भी इस वैज्ञानिक दौरमें पीछे नहीं रहना है। शौर्य, उत्साह, साहस और श्रीकृष्णकृपाका संबल लेकर हमें भी प्रगतिके पथपर अदम्य वेगसे आगे बढ़ना होगा। उद्यमशील एवं दृढ़प्रतिज्ञ वीरके समक्ष सफलता हाथ बाँधे खड़ी रहती है। विजयलक्ष्मीके हाथकी वरमाला उसीके कण्ठको सुशोभित करती है।

गीतामें भगवान्ने विज्ञानसहित ज्ञानका उपदेश दिया है। प्राचीन द्वापरयुगमें 'विज्ञान' का जो भी अर्थ रहा हो; वर्तमान युगमें 'विज्ञान' शब्दसे आधुनिक विज्ञानको भी ग्रहण करना होगा और वैज्ञानिक प्रगतिको गीतानुमोदित मानकर उसमें श्रद्धा और उत्साहके साथ प्रवृत्त होना होगा। आज हर वस्तुको समीक्षात्मक दृष्टिसे देखने और उसकी उपयुक्त परिभाषा बनानेकी आवश्यकता है। परन्तु हर जगह बुद्धि, विवेक एवं तर्कको साथ रखना होगा। जल्दबाजीमें आकर सहसा कुछ कर बैठना ठीक नहीं। अविवेक या अविचारसे किया गया कार्य विनाशके गर्तमें गिराता है। जो विचारपूर्वक कार्य करता है, उस धीर-वीरके गुणोंपर मुग्ध हो सम्पदाएँ स्वयं उसका वरण करती हैं। जैसा कि नीतिवेत्ता विद्वान् महाकवि भारविका कथन है—

**सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।**
**वृणते हि विमृश्य कारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः॥**

●

## नव वर्षका अभिनन्दन

नये ज्ञान - विज्ञान - भानुका दिव्य उदय हो,
अघ अवसाद विषाद - तिमिरका सत्वर लय हो।
चारु विचार - रश्मियोंसे नव जागृति आये,
बुध - विहगोंके विमल वाद दिग् - दिग्में छायें।
नव प्रभात में अर्घ्ययुत नत - वन्दन अर्पित तुम्हें,
आवो हे नव वर्ष शुभ अभिनन्दन अर्पित तुम्हें॥

# गोसूक्त

ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥ १ ॥

गाय रुद्रोंकी माता वसुओंकी पुत्री आदित्योंकी बहन और घृतरूप अमृतका खज़ाना है। प्रत्येक विचारशील पुरुषसे मेरा यही कहना है कि इस निरपराध एवं अवध्य गौका वध मत करो ॥ १ ॥

ॐ आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥ २ ॥

गायोंने हमारे यहाँ आकर हमारा कल्याण किया है। वे हमारी गोशालामें सुखसे बैठें और उसे अपने नादसे सुशोभित करें। ये रंग-बिरंगी गाएँ अनेक रूप बच्चे पैदा करें और इन्द्र ( परमात्मा )के यजनके लिए उषाकालसे पूर्व दूध देनेवाली हों ॥ २ ॥

ॐ न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः स च ते गोपतिः सह ॥ ३ ॥

इन गौवोंको किसी प्रकारकी हानि न हो और न इन्हें चोर चुरा ले जायें, न शत्रु किसी प्रकारका कष्ट पहुँचायें। इन गायोंसे ही इनका स्वामी यज्ञ, दान करनेमें समर्थ होता है, इनके साथ वह चिरकाल तक संयुक्त रहे ॥ ३ ॥

ॐ गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामि हृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥ ४ ॥

गौवें हमारी मुख्य सम्पत्ति हों। इन्द्र हमें गोधन प्रदान करे। यज्ञोंकी प्रधान वस्तु सोमरसके साथ मिलाकर गायका दूध नैवेद्य बने। जिसके पास ये गाएं हैं, वह एक प्रकारसे इन्द्र है। मैं अपने श्रद्धायुक्त मनसे गव्यपदार्थों द्वारा भगवान्‌का यज्ञ करता हूं ॥ ४ ॥

ॐ यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥ ५ ॥

हे गोमाता, तुम दुर्बल शरीरको हृष्ट-पुष्ट कर देती हो, तेजोहीनको सुन्दर तेजस्वी बना देती हो। तुम अपने मंगलमय नादसे हमारे घरको मंगलमय बनाती हो। इसलिए समाजमें तुम्हारा ही यशोगान हुआ करता है ॥ ५ ॥

ॐ प्रजावती सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः।
मा वस्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥ ६ ॥

तुम विपुल सन्तानवाली बनो। तुम्हारे लिए सुन्दर चारागाह हों, शुद्धजल पीनेके लिए जलाशय हों, तुम हिंसक जीवोंसे सदा रक्षित रहो। रुद्रका शस्त्र तुम्हारी रक्षा करता रहे ॥ ६ ॥

—अथर्ववेद ४।२१।

# पुरानी मान्यताएँ नयी स्थापनाएँ

★

आज हमारी कल्पित मान्यताओंकी पुरानी दीवारें एक-एक करके ढहती चली जा रही हैं। पुरानी दीवारें ढहें और उनकी जगह नयी इमारतें खड़ी हों, यही स्वाभाविक क्रम है। तथापि कुछ लोग इस परिवर्तनसे संतप्त देखे जाते हैं और वहुतसे लोग इसका सोत्साह स्वागत करते हैं। जो संतप्त हैं, उनका कहना है, कि इन दीवारोंको महामनीषी पुरुषोंने वनवाया था, इनके भीतर हम और हमारा परिवार अधिक सुरक्षित थे। दूसरे लोगोंका यह तर्क है कि दीवारें जब पुरानी होंगी तब गिरेंगी ही, उनमें रहना खतरनाक है। उन्हें गिरने दीजिए और वर्तमान समयकी आवश्यकताके अनुसार उन्हें नवीन रूप देकर खड़ी कीजिए। वे समाजके लिए अधिक उपयोगिनी हो सकती हैं। जो शाश्वत सत्य है, उसके परिवर्तनका तो कोई प्रश्न ही नहीं है; वह सनातन है—अपरिवर्त्य है। हमें पुरानेपनसे द्वेष नहीं होना चाहिए और न नूतनमें हमारी आसक्ति ही रहनी चाहिए। कालक्रमसे हर वस्तु नयी-पुरानी होती रहती है। तदनुसार वह उपयोगिनी और अनुपयोगिनी होती है। उपयुक्तका ग्रहण तथा अनुपयुक्तका त्याग—यही विवेक है। विवेकसे ही हम देश और समाजकी रक्षामें सक्षम हो सकते हैं। विवेक खो देनेपर तो हमारा शतमुख विनिपात अवश्यम्भावी है ही।

इतिहास साक्षी है, जब हम प्रबुद्ध थे और विवेकसे काम लेते थे, तब हमारे ऊपर जब भी कहींसे कोई आक्रमण हुआ, हम विजयी हुए। हूण आये, शक आये तथा अन्य भी वहुत-से अनार्य दस्यु इस देशपर आक्रमणकारी वनकर आये परन्तु हमारे संगठित विक्रमसे पराजित हुए। हमने उन्हें अपने भीतर इस तरह विलीन कर लिया कि उनकी पृथक् सत्ता ही नहीं रह गयी। परन्तु धीरे-धीरे हम संकीर्णताओंमें वँधे और विवेकसे भ्रष्ट हुए। हमने यह मान लिया कि यदि कोई हिन्दू अहिन्दू-म्लेच्छके सम्पर्कमें आ गया, भूलसे भी उसने उसके दिये अन्न-पानको ग्रहण कर लिया, तो वह हिन्दुत्वसे गिर गया। अब वह हिन्दुत्वके घेरेमें नहीं रह सकता।' इस भ्रान्त धारणामें वँधनेका परिणाम यह हुआ कि हम कल्पित—आरोपित दोषोंको

दूसरोंसे सुनकर भी अपने समाजके लोगोंको अपनी जाति-सीमासे पृथक् करते गये। जो बलात्कारसे भी अहिन्दू बनाये गये थे, उनको भी हम हिन्दुत्वके मन्दिरमें पुनः प्रवेश देनेको उद्यत नहीं हुए। इस प्रकार हमसे निष्कासित लोगोंका दल बनता एवं बढ़ता चला गया और म्लेच्छ धर्ममें दीक्षित हो वे सबके सब हिन्दुत्वके प्रबल विरोधी बन गये। उन्होंने बाहरी लुटेरोंका साथ दिया और सनातन कालसे स्वतन्त्र भारतवर्ष हमारे जीते जी पराधीन हो गया। गुलामीकी जंजीरमें जकड़ गया। हमारी कट्टर मनोवृत्ति ने ही शारदादेश काश्मीरको मीर-मुल्लाओंका देश बना दिया। यद्यपि सारे देशपर धीरे-धीरे म्लेच्छ-राज्यका झंडा फहराने लगा, तथापि कुछ ऐसी विभूतियाँ समय-समयपर आविर्भूत हुईं, जिन्होंने आजादीकी चिनगारीको बुझने नहीं दिया। स्वतन्त्रताकी वेदीपर बलिदानकी परम्परा कायम रक्खी। वीरवर पृथ्वीराज चौहान, महाराणा प्रताप तथा वीर केसरी शिवाजी और इन सबकी छत्रछायामें संगठित असंख्य शूर वीर भारतीयोंने अपने समयमें अनार्य विदेशी शक्तियोंसे आजीवन लोहा लिया तथा स्वतन्त्रताकी ज्योतिको सदा प्रज्वलित रक्खा।

म्लेच्छ-राज्यका पतन हुआ, परन्तु उस संक्रमणकालमें सौदागरके रूपमें यहाँ जमे हुए गोरे फिरंगियोंने कूटनीतिके द्वारा अपना सिक्का जमाना शुरू किया। उन दिनों देशकी समूची जनता विदेशी शक्तियोंके विरुद्ध उठ खड़ी हुई और सारे देशमें स्वतन्त्रताके लिए संघर्ष छेड़ दिया। हम उस सुनहरे अवसरको सन् सत्तावनके गदरके नामसे याद रखते हैं।

देशके दुर्भाग्यसे भारतमें अंग्रेजी हुकूमत कायम हो गयी परन्तु देशवासियोंके हृदयमें स्वतन्त्रताकी आग जलती ही रही। यद्यपि हिन्दू-मुसलमानोंमें फूट डालकर अंग्रेज बहुत वर्षों तक राज्य करते तथा यहाँकी अपार धनराशि अपने देशमें भेजते रहे, तथापि गाँधीजी के नेतृत्वमें देश संगठित हुआ और अंग्रेजोंको बोरिया-बिस्तर बाँधकर यहाँसे भागनेको विवश होना पड़ा। जाते-जाते उन विदेशी वंचकोंने इस देशको दो राष्ट्रोंमें विभक्त कर दिया और यह सब उन्हीं म्लेच्छ नामधारी लोगोंके दुराग्रहसे संभव हुआ, जो किसी समय हमारी ही संतान थे। मुसलमानोंने विभिन्न क्षेत्रोंमें अपनी बहुल संख्याकी दुहाई देकर गोरे प्रभुओंसे अपने लिए नये राज्यकी मांग स्वीकार करा ली और अवशेष भारतको भी आत्मसात् कर लेनेका वे स्वप्न देखते हैं। इस स्वप्नको सफल बनानेके लिए वे कई बार इस देशपर आक्रमण कर चुके किन्तु भारतके शौर्यके समक्ष उन्हें मुँहकी खानी पड़ी है। संतोष की बात है कि भारत के प्रति दृढ़ निष्ठा रखनेवाले राष्ट्रीय-मुसलमान उनके साथ नहीं हैं।

देशको इस दुरवस्था तक पहुँचानेमें हमारी अपनी ही भूलें बहुत कुछ जिम्मेदार हैं। इस समय देशमें प्रजातन्त्र शासन कायम है। यहाँकी जनता जागरूक हो चुकी है और अपने दायित्वको समझने लगी है। आजकी नयी पीढ़ीके नवयुवक अब उन पुरानी गलतियोंको दुहराने नहीं देंगे। आज संख्याका महत्त्व हो गया है, जो जाति बहुसंख्यक होगी, वही अपना प्राधान्य रख सकेगी; अन्यथा दूसरे लोग संख्यासुरके बलपर हम सबको उदरस्थ कर लेंगे।

अतः अब हमारे धर्माचार्यों को जाति-धर्मकी परिभाषाओं में वांछनीय सुधार करना चाहिए। यह काम कोई नया नहीं है। समय-समयपर हमारे यहाँ पुरानी स्मृतियोंके रहते हुए भी नयी स्मृतियाँ बनी हैं। जन्मना जातिकी मान्यता होनेपर भी कर्मणा जाति भी स्वीकार की गयी। महर्षि विश्वामित्र इसके उदाहरण हैं। महाभारतमें युधिष्ठिर-नहुषका संवाद इस विषयमें द्रष्टव्य है। सन्ध्या वन्दनहीन ब्राह्मणको द्विजकर्मसे वहिष्कृत कर देनेकी आवाज उठायी गयी। 'जन्मना जायते शूद्रः' के अनुसार जन्मसे सभी शूद्र हैं, संस्कारसे द्विजत्व आता है। देश कालके अनुसार आचार संहिताओंमें संशोधन हुआ है।

. भगवान् श्रीकृष्णने सत्य और अहिंसाकी नयी परिभाषा दी। आज भी हिन्दू-राष्ट्र या हिन्दुस्तानकी रक्षाके लिए हिन्दुत्वकी परिभाषाको व्यापक बनाना होगा। जो भी हिन्दुस्तानका नागरिक हो और इस देशके प्रति मातृभूमि-जैसी निष्ठा रखता हो, वह हिन्दू है; यह हिन्दूकी राष्ट्रिय परिभाषा है। इसके अनुसार दूसरे सम्प्रदायोंके लोग भी 'हिन्दू' कहे और माने जायँगे। भले ही उनके आचार-विचार अपनी-अपनी साम्प्रदायिक दृष्टिके अनुसार परस्पर भिन्न हों। जाति, मजहब या सम्प्रदाय भिन्न-भिन्न हो सकते हैं; परन्तु राष्ट्रियता सबकी एक है। राष्ट्र इन छोटी-छोटी सीमाओंसे बहुत ऊपर और व्यापक तत्त्व है। हमें यह भी सीखना चाहिए कि अपने राष्ट्र या समाजके भीतर रहनेवाले अल्प-संख्यक वर्गके प्रति हमारा अच्छा व्यवहार हो। हम किसीके प्रति ऐसा बर्ताव न करें, जिससे ऊँच-नीचकी भावनाको बल मिले और एक वर्ग सामाजिक अपमानका अनुभव करे। हिन्दूराष्ट्र या हिन्दू-समाज अपने घटक वर्गोंको अपना अभिन्न अङ्ग समझे और सबके दुःख या असुविधाको दूरकर सभीको अपने ही समान सुख-सुविधा पहुँचानेका प्रयत्न करे। सबमें एक ही भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं; अतः उनके नाते प्रत्येक प्राणिवर्ग हमारे लिए आदरणीय तथा वन्दनीय होना चाहिए।
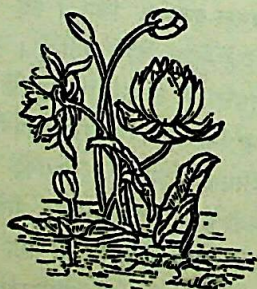
सबमें ब्रह्मदृष्टि ही समदृष्टि है, वही पारमार्थिक साम्यवाद है,
सर्वत्र व्यवहार या वर्तावकी समता नहीं—

# साम्यवाद और उसका विश्लेषण

[ श्री व्ही॰ दातार शास्त्री ]

'साम्यवाद' शब्द आधुनिक कम्यूनिज्म-विचारधाराके लिए आजकल प्रयुक्त होने लगा है, इसीलिए आधुनिक प्रतीत होता है, पर वस्तुतः यह आधुनिक नहीं अति प्राचीन है और प्राचीन कालसे ही विद्वद्वन्द्य और मनीषी पुरुष इसका प्रयोग एवं विश्लेषण करते आ रहे हैं।

साम्यका अर्थ है समभाव और वादका अर्थ है विचार। सारांश यह कि समताका विचार साम्यवाद कहलाता है। हमारे ऋषि-मुनियोंने साम्यवादके सम्बन्धमें उच्च स्तरपर विचार किया है।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको आत्मज्ञानका उपदेश करते हुए साम्यवादका वर्णन किया है :

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

'विद्या-विनय-संपन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते तथा चांडालमें भी पंडितजन समताका दर्शन करते हैं।'

श्रीमद्भागवतमें भी भगवान्‌ने उद्धवको समताका यही स्वरूप वताया हैं—:

**ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिङ्गके।**
**अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक् पण्डितो मतः॥**

ब्राह्मण, चांडाल, चोर, ब्रह्मण्य, सूर्य, अग्नि, क्रूर और अक्रूर सवमें समदृष्टि रखनेवाला ही पंडित माना गया है।

सम शब्दके अनेक अर्थ हैं। 'समः सर्वपर्यायः'—'सम' सवको कहते हैं। समका अर्थ तुल्य या वरावर भी होता है। यथा—**न त्वत्समः**। गीतामें सम शब्दका अर्थ ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् वतलाया है :

**निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः।**

निर्दोष ब्रह्म ही सम शब्द वाच्य है उसका पदार्थ मात्रमें भाव = सत्ता देखना, उसका विचार करना ही साम्यवाद अथवा समभाव है।

वस्तुमात्रमें ईश्वराधिष्ठान है, इस वातको समझकर चलनेवाला मनुष्य ही सच्चा साम्यवादी है। भागवतमें कहा है :

**सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।**
**भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥**

'संपूर्ण जीवमात्रमें जो आत्मस्वरूप भगवान्‌को देखता है और जो आत्मामें भगवत्स्वरूप संपूर्ण जीवोंको देखता है, वह भागवतोत्तम कहलाता है।'

केवल वैषयिक वातोंमें साम्य आ जानेसे ही साम्यवाद सिद्ध नहीं होता, जवतक उसे सम, समता अथवा साम्य इसके वास्तविक अर्थका वोध नहीं होगा, तवतक साम्यवादकी कल्पना पूर्ण नहीं हो सकती। जव इस संसारका निर्माण ही प्रकृतिके गुण-वैषम्यसे हुआ है तव उसके अंदर निर्मित प्राकृत-वैकृत पदार्थोंमें साम्य कहाँसे आ सकता है? आजकी आधुनिकतामें भले ही साम्यवादका अर्थ 'सवकी व्यवहार-स्थिति समान रहना' हो, परंतु शास्त्रदृष्टिसे और प्रत्यक्षानुभवसे यह अर्थ अपूर्ण है, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है।

सांख्यदर्शनके आचार्य भगवान् कपिलने श्रीमद्भागवतमें साम्यवादका स्वरूप इस प्रकार वतलाया है :

**सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।**
**ईक्षेतानन्यभावेन भूतेष्विव तदात्मताम्॥**

'जिस प्रकार देह दृष्टिसे जरायुज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज्ज, चारों प्रकारके प्राणी पंचभूतमात्र

हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण जीवोंमें आत्माको और आत्मामें सम्पूर्ण जीवोंको अनन्य भावसे देखना चाहिए।' आगे कपिलदेवने इस बातको और भी स्पष्ट किया है :—

> अर्चादावर्चयेत्तावदीश्वरं मां स्वकर्मकृत्।
> यावन्न वेद स्वहृदि सर्वभूतेष्ववस्थितम्॥
> (श्रीमद्भाग० ३।२९।२५)

'प्रतिमा आदिमें भी मनुष्य तभीतक मुझ ईश्वरकी पूजा करे, जबतक उसे अपने हृदयमें एवं सम्पूर्ण प्राणियोंमें स्थित परमात्माका अनुभव न हो जाय।'

परम भागवत और ज्ञानयोगी प्रह्लादने दैत्य-पुत्रोंको सिखलाते हुए साम्यवादका स्वरूप इस प्रकार बतलाया है :

> हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवानास्त ईश्वरः।
> इति भूतानि मनसा कामैस्तैः साधु मानयेत्॥
> (श्रीमद्भाग० ७।७।३२)

'सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि समस्त प्राणिमात्रमें विराजमान हैं, ऐसी भावना रखकर यथाशक्ति दान-मानसे, मैत्रीसे और अभेददृष्टिसे जीवमात्रको संतुष्ट रखे, उनके साथ सद्-व्यवहार करे और हृदयसे उसका सम्मान करे।'

स्वयं अपने पिता हिरण्यकशिपुको साम्यवादका आचरण करनेके लिए प्रह्लादने कहा है—

> जह्यासुरं भावमिमं त्वमात्मनः, समं मनो धत्स्व न सन्ति विद्विषः।
> ऋतेऽजितादात्मन उत्पथस्थितात्तद्धि ह्यनन्तस्य महत्समर्हणम्॥
> (श्रीमद्भाग० ७।८।१०)

'पिताजी आप इस आसुर भावको त्यागकर समत्वमें अपने मनको स्थित कीजिये। उन्मार्गगामी अन्तःकरण की वृत्तियोंके अतिरिक्त आपका दूसरा कोई शत्रु नहीं है, सर्वत्र समभाव रखना—यही भगवान्‌की सर्वश्रेष्ठ पूजा है।'

देवर्षि नारदने साम्यवादको व्यवहारमें भी अपनाया है। उन्होंने राजा युधिष्ठिरको समझाते हुए कहा :

> यावद् भ्रियेत जठरं तावत्स्वत्वं हि देहिनाम्।
> अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥
> मृगोष्ट्रखरमर्काखु - सरीसृप् - खगमक्षिकाः।
> आत्मनः पुत्रवत्पश्येत्तैरेषामन्तरं कियत्॥
> (श्रीमद्भाग० ७।१४।८-९)

'मनुष्यका अधिकार केवल उतने ही धनपर है जितने धनसे उसकी भूख मिट जाये, इससे अधिक सम्पत्तिपर जो अभिमान करता है वह चोर है और दण्डके योग्य है। मृग,

ऊँट, गधा, वानर, चूहा, साँप, पक्षी और मक्खी आदि सभी जीवोंको पुत्रोंके समान समत्वसे देखना चाहिए, उनमें और अपने पुत्रोंमें अन्तर ही कितना है ?'

इस प्रकार व्यवहारमें अन्न-वस्त्रकी, जो मनुष्य—जीवनके मुख्य विषय हैं, समता होनी चाहिए—यह नारदजीने स्वीकार किया है। वैसे तो आहार, निद्रा, भय, मैथुन—इन चार बातोंमें जीवमात्रका साम्य है; फिर भी मनुष्यको बुद्धि ( विचार-शक्ति ) नामकी एक विशेष वस्तु प्राप्त हुई है, जिससे अन्य जीवोंकी अपेक्षा मनुष्यमें विषमता आ गयी। इसी वैषम्यसे मनुष्य 'मनुष्य' कहलाता है, अन्यथा वह संपूर्ण जीवोंके समान आहार, निद्रादि सेवन करनेवाला केवल एक जीवमात्र रह जाता।

आजके समयमें साम्यवादका नारा लगानेवाले उसका अर्थ इस प्रकार प्रकट करते हैं कि—"न कोई गरीब है न कोई अमीर। न छोटा है न बड़ा; सब मनुष्य बराबर हैं।" बात तो ठीक है; परन्तु जीवमात्र कर्मानुसारी है, कर्मानुसार पैदा होता है, कर्मानुसार ही लीन होता है तथा सुख-दुःख, आदि भोग भी उसे कर्मानुसार ही प्राप्त होते हैं।

जिस जीवका जितने परिमाणका भला-बुरा कर्म होगा, वह संसारमें वैसे ही छोटा-बड़ा, गरीब-अमीर होता है। सबके कर्म बराबर हों, ऐसा असंभव है, एक कुत्ता किसी सेठ या राजासे सम्मान पाता है, एक कुत्ता सड़कोंपर सड़ी-गली चीजें और मार भी खाता है। किसी शायरने कहा है—

**दो फूल साथ फूले किस्मत जुदा-जुदा है।**
**नौशेके एक सरपै एक कब्रपर चढ़ा है॥**

इस प्रकार गरीब-अमीर होना या छोटा-बड़ा होना मनुष्यके कर्माधीन है, ब्राह्मण-क्षत्रियादि वर्ण केवल जन्मसे ही ब्राह्मणादि नहीं कहलाते, वैसा होनेमें उनका कर्म ही प्रधान होता है।

जबतक कर्मप्रधान स्थिति है और जबतक उन कर्मोंपर अहंभाव है, तबतक मनुष्योंमें साम्यवादका व्यावहारिक निर्माण कैसे हो सकता है ?

इस शास्त्रोक्त साम्यवादको, जो कि आध्यात्मिक जीवनका मुख्य लक्ष्य है, भारतीय शास्त्रकारों एवं विद्वानोंने सर्वोच्च पदपर बिठाया है। इस स्थितिको प्राप्त करनेपर मनुष्य ईश्वर-भावको प्राप्त कर लेता है। गीतामें कहा है—

**निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः।**

( गीता ५।१९ )

श्रीमद्भागवतमें साम्यवादको जीवके निःश्रेयस एवं स्वातन्त्र्यका परमोच्च साधन कहा गया है। आजके युगमें इसका यथार्थ विचार परम आवश्यक है, जिससे हम अपने राष्ट्रको मिथ्या वादोंसे बचाते हुए यथार्थ साम्यवादको पाकर कर्ममार्गपर दृढतापूर्वक चल सकें।

# पुरुषार्थ

श्री गोस्वामीजी, श्री रामकुटिया-रेवदर

★

आधुनिक शिक्षाप्राप्त व्यक्ति प्रारब्धमें विश्वास नहीं करते और प्रारब्धवादियोंको अविचारी, पुरातनता-प्रेमी, अन्ध-विश्वासी और आलसी कहते हैं, विचार करनेपर ज्ञात होगा कि यह बात पूर्णतः ऐसी नहीं है।

हमारा जीवन एक विशाल शृंखलाकी एक साधारण छोटी-सी कड़ी है, वह शृंखला प्रायः सुदूर भूतकालतक गयी हुई है और उसे सँभाले विना आगेकी ओर जाना सम्भव नहीं है। वह बन्धन स्वकृत है, उससे मुक्ति भी स्वकरण-अनुस्यूत है। शृंखला संचित है और कड़ी प्रारब्धरूपान्तर्गत है। इस प्रकार पुण्य-पाप जैसा भी कर्म किया जाता है वैसा ही फल प्राप्त होता है—जैसे बीजके विना कोई चीज पैदा नहीं होती। बीजमें ही बीज पैदा होता है और बीजसे ही फल उत्पन्न होता है। इस दृष्टान्तके अनुसार प्रारब्ध भी पुरुषार्थके विना काम नहीं देता।

बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ, शरीर और अहंकारके द्वारा की जानेवाली चेष्टाको 'कर्म' कहा जाता है, वे चाहे भले या बुरे हों। इन्हींसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। साक्षी चेतनमें पहले जैसी विषयकी अनुभूति होती है, वह वैसी ही चेष्टा भी करता है। मनके व्यापारके अनुसार शरीर चलता है—उसे पुरुपार्थ कहा गया है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इनमें पुरुपार्थ देखा जाता है। पुरुपार्थ दो प्रकारका है—एक शास्त्रानुसार और दूसरा शास्त्रविरुद्ध।

पूर्वकृत कर्मोंके फलरूप प्रारब्ध और वर्तमान जन्मके पुरुपार्थ—इन दोनोंमें वर्तमान जन्मका पुरुपार्थ ही प्रत्यक्षतः वलवान् है—'कर्मणैव हि संसिद्धमास्थिता जनकादयः।' इस जगत्में नक्षत्र, नाग, यक्ष, चन्द्रमा, सूर्य, वायु, वृहस्पति, ध्रुव, गरुड़ और राजा जनक आदि पुरुपार्थसे उत्तम गतिको प्राप्त हुए। अतः जो पुरुपार्थ न करके केवल दैव ( प्रारब्ध)के भरोसे बैठा रहता है वह नपुंसकको पति बनानेवाली स्त्रीकी तरह व्यर्थ ही दुःख उठाता है। कहा गया है—

ये समुद्योगमुत्सृज्य स्थिता दैवपरायणाः।
ते धर्ममर्थं कामं च नाशयन्त्यात्मविद्विषः॥

'जो लोग पुरुषार्थका त्याग करके केवल प्रारब्धके भरोसे बैठे रहते हैं, वे आलसी मनुष्य स्वयं ही अपने शत्रु हैं, वे अपने धर्म, अर्थ और काम—इन तीन पुरुषार्थोंका नाश कर डालते हैं।'

प्रारब्ध और पुरुषार्थमें अन्तर इस प्रकार है—अर्थ और कामके विषयमें पूर्वजन्मका कर्म ही प्रबल होता है। अर्थ और कामके लिए कितने ही प्रयत्न क्यों न किये जाँय, परन्तु प्रारब्धमें नहीं है तो वह कभी भी प्राप्त नहीं होगा। कहा है—

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।
पञ्चैतानि च सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः॥

'आयु, पौरुष, धन, विद्या और मृत्यु—ये जब जीव गर्भमें जन्म लेता है, उसी समय उसके साथ-साथ बनाये जाते हैं।

भावीको कोई भी मिटानेवाला नहीं है, अतः उक्त प्रसंगों पर हमें प्रारब्धके विचारसे सन्तोष, धैर्य और शान्ति धारण करते हुए जीवन यापन करना चाहिए। काल, कर्म और ईश्वरपर मिथ्या दोषारोपण नहीं करना चाहिए। परन्तु प्रारब्ध अमिट माननेका आशय यह नहीं कि बिना उद्यम किये हुए हमारे अभीष्ट अर्थकी सिद्धि स्वतः ही हो जायगी; यह तो हमारी भूल है।

नाहारं चिन्तयेत्प्राज्ञो धर्ममेकं हि चिन्तयेत्।
आहारो हि मनुष्याणां जन्मना सह जायते॥

'ज्ञान-निष्णातको आहारादिकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए, वह एकमात्र धर्मका ही चिन्तन करे; क्योंकि आहार तो मनुष्योंके लिए जन्मके साथ प्रकट होता है।'

मुक्ति या भगवत्प्राप्तिके लिए इस जन्मका पुरुषार्थ ही बलवान होता है अतः पुरुषको शास्त्रीय प्रयत्नों तथा साधु पुरुषोंके संगसे सतत उद्योग-शील होना चाहिए। मैं दैवके अधीन हूँ, मैं कर्म करनेमें स्वतन्त्र नहीं हूँ, पूर्वजन्मका प्रारब्ध मुझे प्रेरित करके विषम परिस्थितियोंमें डाल देता है—इस प्रकारकी बुद्धिको बलपूर्वक दबाना चाहिए; क्योंकि इस प्रकारका अप्रत्यक्ष पुरुषार्थ प्रत्यक्ष प्रयत्नोंसे अधिक प्रबल नहीं होता। तबतक प्रयत्न-पूर्वक उत्तम पुरुषार्थके लिए पौरुष करते रहना चाहिए जबतक कि पूर्व जन्मका एकत्रित अशुभ कर्म-समुदाय पूर्णतः नष्ट न हो जाय। शास्त्रोंके अभ्यास, गुरुके उपदेश और अपने प्रयत्न—इन तीनोंसे ही सर्वत्र उत्तम पुरुषार्थकी सिद्धि होती है।

कर्तव्य-पालनके लिए जो शरीर का संचालन होता है वही जिसका धर्म है, उस क्रियासे सत्संगसे और सत् शास्त्रोंके अध्ययनसे शुद्ध एवं तेज—ज्ञानमय हुई अपनी बुद्धि ही, जिससे स्वयं ही आत्माका उद्धार किया जाता है, परम पुरुषार्थ है, वही परमस्वार्थकी सिद्धि है। दुःखकी निवृत्ति और सुखकी प्राप्ति यह मनुष्यका स्वार्थ है। इस स्वार्थकी प्राप्ति करनेवाला जो

आवश्यक साधन है वह है—आत्मज्ञान। जिससे सभी अज्ञान-जनित कर्मफल-समुदाय नष्ट हो जायेंगे। कहा है—

> अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
> सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि॥
> यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
> ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥
> न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

(गीता ४।३६-३८)

'यदि सब पापियोंसे अधिक पापी हो तो भी ज्ञान रूप नौका द्वारा निःसन्देह पापोंसे तर जायगा। हे अर्जुन! जैसे प्रज्वलित अग्नि इन्धनको भस्म कर देती है वैसे ही ज्ञानाग्नि संपूर्ण कर्मोंको भस्म कर देती है। इसलिए इस संसारमें आत्मज्ञानके समान पवित्र करनेवाला कुछ भी नहीं है।'

> श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
> ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

'जितेन्द्रिय, तत्पर और श्रद्धावान् मुमुक्षु पुरुष तो ज्ञानको शीघ्र प्राप्त होता है। ज्ञान पाकर वह तत्क्षण परमपद—परमशान्तिको प्राप्त हो जाता है।'

मानवता बहुमूल्य वस्तु-विशेष है। ब्रह्मको पानेका अधिकार मानवको ही है, अतएव जन्ममरणके चक्करसे मुक्ति पाने हेतु पुरुषार्थ करना परम आवश्यक है। धन और कामके लिए भी पुरुषार्थ है, धर्माचरणपूर्वक ही धनोपार्जन आदि करना उचित है। इस प्रकार पुरुषार्थ करके अपने जीवनको सफल बनाना चाहिए।

## भद्र-भावना

परमात्मन्! हमारे राष्ट्रमें ब्राह्मण तेजस्वी, क्षत्रिय योद्धा, गौएँ दुधारू, बैल भारवाही और अश्व शीघ्रगामी हों। स्त्रियाँ गृहकार्यमें निपुण, रथी विजयी तथा पुत्र सभ्य एवं वीर हों। समयपर वर्षा होती रहे, ओषधियाँ फलवती हों और हम सबको योगक्षेम प्राप्त हो।

—यजुर्वेद २२।२२

## गोमाता तथा भारतीयताकी रक्षाके लिए जन-जागरण आवश्यक

# समयका आह्वान

*स्वामी योगिराज गोवत्स*

हम यह सोच नहीं पाते कि दुर्भाग्यको मिटाकर भारतकी प्रजाको कैसे सुखी बनाया जाय। शताब्दियोंसे गिरे हुए इस देशमें धीरे-धीरे सत्त्व नष्ट होता गया है और उसके कारण मानवके मानसिक स्तरमें निर्बलता भरती गयी है। अनाचार एवं भ्रष्टाचार लोकमें घर बना चुके हैं। व्यक्तिका स्वार्थ महत्त्वाकांक्षाके साथ पराकाष्ठापर पहुँच गया है। ऐसी अवस्थामें प्राणियोंके भीतर संसारके दुःखका भर जाना स्वाभाविक हो जाता है। यही सब इस भारतके रोग हैं।

संसार देख रहा है कि परतन्त्रताकी बेड़ियोंको तोड़कर हमारा महान् राष्ट्र स्वतन्त्र हुआ है। इसके विशाल आकाशपर भारतीय ध्वज फहरा रहा है। यह बड़े ही गौरवकी वस्तु है और महान् बलिदानोंके बाद प्राप्त हुई है। अपना सर्वस्व होमकर भी इसकी रक्षा करते रहना प्रत्येक भारतीयका कर्तव्य है।

देशकी आजादीमें देशवासियोंने अपनी बहुत बड़ी कुर्बानियाँ देकर गहरा मूल्य चुकाया है। देशका शासन-सूत्र देशके सयोग्य पुत्रोंके हाथोंमें पहुँच गया है और अब वे प्रजातन्त्रके रूपमें शासन चला रहे हैं। जिनके नामपर देशके लम्बे भूभागपर भारत बना, उन करोड़ों-करोड़ों हिन्दुओंके हृदयमें यह आशा और विश्वास हो गया कि उनकी परम पूज्य गोमाताओंकी हत्या बन्द हो जायेगी पर महान् दुःखकी बात है कि अभीतक गोहत्या बन्द नहीं हुई। शासन चलानेवालोंसे यह पूछा जा सकता है कि गोहत्या क्यों नहीं बन्द करते? प्रजाकी यह हार्दिक माँग क्यों कुचली जाती है? इसका कोई यथार्थ उत्तर नहीं। जो कुछ अन्तर्राष्ट्रिय बहाना बताया जाता है, वह न्यायसंगत नहीं है। भावी पीढ़ियाँ इस अपराधको कभी क्षमा नहीं करेंगी! इस महान् पातकको मिटानेके लिए प्रजाको फिर सोच-विचारकर ठोस कदम उठाना होगा।

भारतकी राजनीतिके बारेमें भी हमें गहरी चिन्ता है। प्रगतिके लिए जो पद्धति आज चलायी जा रही है उसके प्रवाहमें कहीं हमारा वह आदर्शवाद भी न वह जाय, जिसके बलपर भारत भारत बना है और संसार इसे मस्तक झुकाता है। यदि हमारी संस्कृति कहीं नष्ट हो गयी तो बड़ा ही अनिष्ट होगा। इस भयानक अभिशापको कैसे रोका जाय यह भी विचारणीय विषय है।

नारी-शिक्षाका स्तर पाश्चात्त्य नवीन धाराका रूप लेता जा रहा है। हमारी पुत्रियाँ प्राचीन सभ्यताका उल्लंघन कर रही हैं। उनका रहन-सहन कोई अच्छा नहीं कहा जा सकता। इसमें एक दिन उस पवित्रतम शीलको ठेस पहुँचनेकी सम्भावना है, जिसके द्वारा भारतीय इतिहास जगमगाया है। इसमें यदि अच्छा सुधार नहीं हुआ तो हम अपने युगके अपराधी गिने जायेंगे। इसके लिए भी उपयुक्त कार्यकी आवश्यकता है।

इस समय यह बड़े ही दुर्भाग्यकी बात है कि हमारी प्रजा अपनी बनायी हुई सरकारसे यह आशा नहीं कर रही है कि वह उसकी पवित्र माँगोंको पूरा करेगी। इसके लिए प्रजाको स्वयं ही सतर्क होकर कोई सुदृढ कदम उठाना पड़ेगा। प्रजातन्त्रका युग है, यदि कोई सरकार ठीक काम नहीं करती तो प्रजा उसका सुधार कर सकती है।

परिवर्तनके युगका यह क्षण भी बहुत नाजुक है। इसमें सन्त महात्माओंको, गद्दियोंके धर्माचार्योंको, उपदेशकोंको, लेखकोंको तथा महान्-महान् कवियोंको सजग हो जाना चाहिए। उन्हें तेजीसे देशके सामने आना चाहिए। उनका प्रचार भारतके घर-घरमें प्रजाको जगानेके लिए होना चाहिए। इस महती सेवाकी समयानुसार आवश्यकता है। इतिहास साक्षी है, कि बड़े-बड़े सन्तोंने, लेखकोंने और कवियोंने समय-समय पर काम किये हैं और देशकी संकटकी घड़ियोंको हटाया है। आज फिर उनकी सेवाओंकी आवश्यकता है।

अन्तमें हम प्रभु रामसे प्रार्थना करते हैं कि वे सबको सद्बुद्धि और बल दें जिससे विश्वका उपकार हो सके।

●

जो अनन्य चिन्तन रत रहकर
करते मेरा सतत भजन।
नित्य युक्त उन भक्तोंका मैं
करता योग - क्षेम - वहन॥

●

# बाँसुरी

सिद्धियाँ आह ! मेरी अधूरी रहीं,
मैं तुम्हारे बिना रह गया अधबना।

गीत मेरे तुम्हारे नहीं हो सके,
जिंदगीके सहारे नहीं हो सके !
स्वप्न मेरे जहाँ के तहाँ रह गये,
आसमांके सितारे नहीं हो सके !

हाथकी वे लकीरें कहाँ खो गयीं,
पाँवकी धूल बन रह गयी कल्पना।

दीप नभमें जले थे तुम्हारे लिए,
चाँद सूरज पले थे तुम्हारे लिए।
किन्तु मेरे लिए था अँधेरा बना,
साँस मेरी बुझाती रही सब दिये !

कौन अनजान-सी मिल गयी यह गली,
जिंदगी बन गयी है, जहाँ वंचना ?

उठ रही है यहाँ रेतकी आँधियाँ,
भूमिसे उग रही हर तरफ बर्छियाँ !
सन सनाहट बियाबानकी सुन रहा,
हँस रही हैं कहीं अनदिखी हस्तियाँ !

और आगे नहीं पाँव बढ़ पा रहे,
व्यर्थ सारी हुई अर्चना - वंदना।

प्राणमें बस गयी थी अमर रागिनी,
बाँहमें थी बँधी स्वर्गकी चाँदनी !
एक तूफाँ अँधेरा लिए आ गया,
खो गयी कौन जाने कहाँ रोशनी !

दूर बजती रही मनहरन बाँसुरी,
मैं भटकता रहा खोजता अनमना।

—परमेश्वर राय 'राजेश'

मन्त्र-जपसे चित्तवृत्तिका निरोध, द्रष्टाकी स्वरूपावस्थिति एवं ईश्वरकी कृपा —

# 'मन्त्र-योग'

रामेश्वर नाथ मिश्र

मन्त्रयोग एक सशक्त साधना-पद्धति है, जिससे साधक क्रमशः उन्नति कर सकता है। जो गुरु अपने किसी शिष्यको मन्त्र देता है, वह एक डाक्टरकी तरह है, जो कि अपने मरीजको दवा देता है और कहता है कि 'इसे दिनमें तीन बार या चार बार पीना' अथवा फिर जैसे 'पेनिसिलिनके इन्जेक्शन····४ लाखके या अधिकके, इतने समयके अन्तरसे लगने चाहिए।' तात्पर्य यह होता है कि दवाकी एक निर्दिष्ट मात्रा अपने एक निर्दिष्ट प्रसार एवं प्रभावके साथ रक्तमें हर समय बनी रहे, जबतक कि बीमारी समाप्त नहीं होती। स्वस्थ होनेपर भी कुछ अंशोंमें रक्षात्मक एवं पौष्टिक रसायनकी आवश्यकता पड़ती है। बस, इसी तरह जब कोई भक्त जिज्ञासु, आर्त, अर्थार्थी या कैसा भी प्रार्थी किसी अच्छे गुरुमें श्रद्धा-विश्वास करके उनसे भवरोगकी दवा माँगता है तो वह गुरु अनेकों प्रकारसे उस शिष्यकी चिकित्सा कर सकता है; जो भी ठीक बैठ जाय। वह गुरु उस शिष्यको साधन बता देगा और फिर उसकी प्रगतिपर नजर रखेगा कि क्या फल होता है? दूसरी दवा भी दी जा सकती है। दवा बदली भी जा सकती है। इसी प्रकार मन्त्र भी बदला जा सकता है।

मन्त्र-जपसे होता क्या है? एक शब्दात्मिका वृत्तिका संचार किया जाता है। इसमें अर्थ-पक्ष ही प्रधान है। इसे मन्त्रका ज्ञान-पक्ष भी कह सकते हैं। उच्चारण एवं ध्वनिको स्वतन्त्र महत्त्व देनेके पक्षमें मैं नहीं हूँ। इस मन्त्र-प्रेरित वृत्ति द्वारा चित्तपर बार-बार आवृत्ति करके आघात किया जाता है। चित्त अन्य वृत्तियोंमें फँसा रहता है। चित्तके लिए दूसरी वृत्ति प्रस्तुत की जाती है और इतने दबावके साथ की जाती है कि वह उन चिपकी हुई वृत्तियोंको हटा दे, जिनसे छुटकारा पाना अभीष्ट है। मन्त्र द्वारा प्रस्तुत की गयी वृत्ति अवांछित वृत्तिसे श्रेयस्कर होनी चाहिए। श्रेष्ठ होनी चाहिए। आवश्यक नहीं है कि मन्त्र-प्रेरित वृत्ति एक दम ब्रह्मलीन करा दे। यह कठिन भी होता है और अनुचित भी। जबतक कि कोई तीव्र आवेगवाला साधक नहीं हो, जो तत्काल दिव्य स्तर प्राप्त करनेकी योग्यता रखता हो। सकाम आराधनाके लिए जपा गया मन्त्र पहले साधककी कामनाएँ पूरी करानेका माध्यम बनेगा। मन्त्रों द्वारा प्रेरित वृत्तियोंका आवृत्तियों द्वारा प्रसार, प्रभाव एवं स्थिरत्व इसलिए कायम रखना आवश्यक है कि जिन वृत्तियोंमें मन आमतौरपर पड़ा रहता है उनकी जड़ें बहुत पुरानी होती हैं। अनेक जन्मोंके संस्कारसे इस जन्मकी वृत्तियाँ बनती

हैं। जिन वृत्तियोंमें जीवन विताना पड़ता है उनमें और प्रारब्धमें कोई अन्तर नहीं है। जैसी वृत्तियाँ वैसा प्रारब्ध। अब जहाँपर, जिन वृत्तियोंके धरातलपर हमारे पूर्व जन्मोंके संचित, प्रारब्ध एवं संस्कारोंमें हमें जीना पड़ रहा है, उन वृत्तियोंके धरातलसे अगर ऊपर उठा जा सके तब तो प्रारब्ध बदले, आत्मा ऊपर उठे। यह मन्त्र-योगका काम है। पाप, पुण्य आदि भी वृत्तियोंके नाम हैं। उनकी ही प्रशाखाएँ हैं। मन्त्र-प्रेरित वृत्ति उनको हटा देती है। धरातल यह है कि हम किस वृत्तिमें स्थित हैं। आत्मा, द्रष्टा किस वृत्तिसे सारूप्य रखता है। जब मन्त्र-प्रेरित वृत्तिसे द्रष्टा सारूप्य रखने लगेगा तब साधकको नया धरातल प्राप्त होगा। वहाँपर कुछ समयके लिए टिकना पड़ेगा। लंगर डालकर रहना पड़ेगा। यदि ऐसा नहीं होता है तब तो मन्त्र-योगमें साधककी सफलता संशय-ग्रस्त हो जायगी।

द्रष्टाका जब वृत्तिसे संयोग होता है, तभी मन बनता है। जीव बनता है, अहंकार भी एक वृत्ति है। जब चित्तमें कोई वृत्ति नहीं रहती है, जब मन निर्विषय होता है तब द्रष्टा जीव नहीं है, पुरुष है, आत्मा है और गुरुत्वार्कपणके नियमसे पुरुषोत्तम-परमात्माके विशाल अंकमें प्रवेश करता है।

योगका तात्पर्य जीवात्माका परमात्मासे मिलन है। जीवात्मा अपने निर्मल निर्विषय रूपमें परमात्माका ही अंश है। परन्तु जबतक यह चित्त-वृत्तियोंके साथ सारूप्य रखता है, अपनेको वैसा ही मानता है। इसलिए चित्त-वृत्तियोंका निरोध होनेपर द्रष्टा अपने स्वरूपमें स्थित होता है। और करेगा भी क्या? कराना तो वृत्तियोंकी लीला है। इसका अपना स्वरूप तो चिन्मय अविनाशी है। जब चित्तवृत्तिकी बात कही जाती है तो यह भी समझना चाहिए कि चित्त क्या है? यह आत्माका, द्रष्टाका बहिर्मुखी रजत-पट है, जिसपर संसारके चित्र उभरते हैं। यह स्वयं दृश्य है और जबतक वृत्तियोंका खेल चलता है, वह चित्त, मन या अन्तःकरणके चित्रपटपर ही चलता है। वृत्तियाँ एक प्रकारसे मनश्चेतनारूपी सागरपर ऊर्मियोंका, लहरोंका, भँवरोंका खेल हैं। वृत्तियोंके शान्त होनेपर द्रष्टाके अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाता। चेतनाके विशुद्ध महासागरकी सत्ता रह जाती है।

परन्तु हमारी चेतनाका लंगर कहाँ पड़ा है? धरातल कौन-सा है? इसे जाने बिना अधः ऊर्ध्वका ज्ञान कैसे होगा?

सारी वृत्तियाँ, आवृत्तियाँ और पुनरावृत्तियाँ चेतना-सागरकी सतहपर लहरोंके खेल हैं। जन्मसे लेकर मृत्यु तक द्रष्टा वृत्तियोंके चक्र-व्यूहमें घिरा रहता है। वृत्तियोंके इस चक्र-व्यूहका नाम ही जीवन है, प्रारब्ध है, संसार है, पुनर्जन्म है। पुनर्जन्म भी वृत्तियोंका ही होता है। द्रष्टाका पुनर्जन्म नहीं होता। वह अजन्मा, अविनाशी है। वृत्तियोंका खेल देश, काल, परिस्थितिकी सीमाओंमें चलता है। जहाँ तक सीमा है, वहाँ मोक्ष नहीं है। अपेक्षा-कृत स्वतन्त्रता हो सकती है। जैसे सत्त्वगुणी वृत्तियाँ अन्य वृत्तियोंकी अपेक्षा अधिक सुखद और कल्याणकारिणी हो सकती हैं तथा दैवी सम्पत्तिकी उपलब्धि कराती हैं। परन्तु मोक्षकी अवस्था गुणातीत है, निस्त्रैगुण्य है। मोक्ष, आत्मसाक्षात्कार, आत्मानुभूति, आत्मज्ञान,

ब्रह्मज्ञान, तत्वज्ञान, कैवल्य—सब पारिभाषिक वाक्य हैं; और एक ही अवस्थाको लक्ष्य कराते हैं।

वृत्तिरहित अवस्थामें जीवका जीवत्व-बोध छूट जाता है और कैवल्य रह जाता है। यह कैवल्य आत्माकी निर्विषय अवस्था है और चूँकि यह आत्मा अपनेको जानता है, और अपनी प्रतीति अपने आपमें करता है, इसलिए यही आत्मानुभूति और आत्मज्ञानकी स्थिति है। आत्मा स्वयं द्रष्टा है, दृश्य नहीं। आत्माकी इस प्रकारकी स्वानुभूति आत्म-साक्षात्कार भी कहलाती है। आत्मा स्वयं ब्रह्मरूप है, इसलिए इसे जब अपनी स्मृति लौटती है तब वह अवस्था ब्रह्मज्ञान अथवा तत्वज्ञान भी कहलाती है। आत्मा स्वयं ही अपनेको जाननेमें समर्थ है। जो कुछ अनात्मपदार्थ है वह आत्माको नहीं जान सकता।

प्राय: भक्त जिज्ञासु प्रश्न करते हैं—क्या समाधिमें आदमी भगवान् बन जाता है? प्रश्न जरा पेचीदा है। भगवान् किसे कहते हैं? ईश्वर कौन है? ईश्वरका ऐश्वर्य तो सारी सृष्टिमें बिखरा पड़ा है। सारी सृष्टि मानों उसकी कविता है। 'पश्य देवस्य काव्यम्, नवो-नवो भवति जायमान:'—अनन्त शक्ति, सामर्थ्य एवं ऐश्वर्यका स्वामी ईश्वर है। वही भगवान् है। सब कुछ उसकी माया है। वह मायापति है। कोई भी साधक या सिद्ध पुरुष उस अर्थमें ईश्वर या भगवान् नहीं बना। आजतक नहीं बना कि अनन्त ऐश्वर्य; समस्त ऐश्वर्य और शक्तिका स्वामी हो जाय। होना भी नहीं चाहिए; क्योंकि दो ईश्वरोंके लिए या दो भगवान्के लिए सृष्टिमें जगह नहीं है। वह जो समस्त जड़-चेतनमय सचराचर सृष्टिका स्वामी है, वह तो एक ही है। जीव उसीका अंश है, पुत्र है। अपने उस पिताकी स्मृति ही एक मात्र साधना है। वही इष्टदेव है और प्रत्येक मन्त्र, जो उसका स्मरण दिलाये, उसको लक्ष्य करे, वही मन्त्र ठीक है। मन्त्रकी जान उसका उच्चारण नहीं है, इष्टदेवका स्मरण है; चाहे जैसे किया जाय। जीव-देहमें जहाँ अरि-चेतना शिव-रूपिणी है, वहाँ प्राणधारा शक्तिरूपिणी है। यह मूल प्रकृतिकी बेटी है। मूल प्रकृति या ( मदर-इगो ) समस्त व्यक्ताव्यक्त अस्तित्वकी सूत्र-धारिणी और स्वामिनी है। लिङ्ग-भेद तो भाषाकी वस्तु है। तत्वमें लिङ्ग नहीं है। कोई भी साधक, सिद्ध, ऋषि, मुनि, पीर, पैगम्बर, अवतार और देवता—समस्त मूल-प्रकृतिका ठेका नहीं ले पाया है।

परन्तु आत्म-दर्शनमें अपनी स्थितिका पता चल जाता है और मूल प्रकृतिसे सम्बन्ध भी ठीक हो जाते हैं। मूल प्रकृतिका प्यार मिलता है। यह सब उपलब्धियाँ भक्तिसे भी प्राप्त होती हैं। आत्म-दर्शनसे इसके अतिरिक्त एक और उपलब्धि होती है। वह है अपने स्वरूपका सही ज्ञान। संक्षेपमें यह परिचय मिल जाता है कि हमारा असली लंगर कहाँ है? वही असली आधार है और वही धरातल शाश्वत भी कहा जा सकता है। परन्तु साधकके लिए धरातलका एक और अर्थ है। वह स्थिति जो नीचीसे भी नीची है, जहाँकी वृत्तियों संस्कारों और प्रारब्धसे बँधकर और बिंधकर वह कष्ट पाता है, यह धरातल साधक-का निम्नतम धरातल है। अपना निर्मल ज्योतिर्मय स्वरूप तो उसकी शाश्वतस्थिति है।

उसके मुकाबलेमें वृत्तियोंके धरातल क्षणिक आवर्त हैं। हाँ, यह जरूर है कि सावधानी न रखनेपर वे क्षण भी बहुत बड़े और दुखदायी हो सकते हैं।

वृत्तियोंके अनवरत प्रवाह का नाम ही मन है, जीवन है। यह प्रवाह कभी रुकता नही हैं। यदि किसी प्रकार रुक गया तो फिर जीव-चेतना, जीवन और मृत्युके आर-पार चिरन्तन और शाश्वत सत्यको देख लेती है, पहचान लेती है और उसके साथ अपने एकत्वका अनुभव कर लेती है। उसी अनुभूतिकी स्मृति ज्ञान कहलाता है। उसे दर्शन भी कहा गया है। यह स्मृति भी एक वृत्ति है। परन्तु यह सर्वोच्च श्रेय एवं श्रेष्ठ है; क्योंकि यह वृत्ति-रहित अवस्थाके अत्यन्त समीप है और अन्तःकरणको निर्मल बनाते हुए जीवनमें स्वयं-प्रकाश आत्माका प्रतिनिधित्व करती है।

जिस प्रकार तमोगुणी एवं रजोगुणी वृत्तियोंका निर्झर चेतनाके निचले केन्द्रोंमें होता है और स्थूल माँगोंका कामना-मूलक होता है, उसी प्रकार सत्त्वगुणी वृत्तियोंका निर्झर आत्माके, प्रकाश-चेतनाके ऊर्ध्व-केन्द्रोंमें होता है। परन्तु प्रत्येक अवस्थामें वृत्तियाँ द्रष्टाके प्रकाशको अपने आवरणका रंग दे देती हैं। सत्त्वगुणका आवरण हल्का और झीना होता है। सत्त्वगुणी वृत्तियोंमें विवेक जाग्रत् होता है, ईश्वरकी कृपा बरसती है। मन्त्रयोगमें भी ये वृत्तियाँ आरोहणकी श्रेष्ठ सोपान हैं।

अन्तमें एक बात और कहकर समाप्त करूँगा। यह विषय अनन्त है। ऊर्ध्व-मुखी वृत्तियाँ ईश्वरकी कृपाका संकेत करती हैं, सत्संग ईश्वरको कृपासे प्राप्त होता है। सत्त्वगुणी वृत्तियोंका संग भी सत्संग है, सद् विचारोंका संग भी सत्संग है। यह विवेक-दीपको जाग्रत् रखता है और विवेक-दीपका ध्यानके साथ दीप एवं प्रकाशका सम्बन्ध है। जाग्रत् विवेकको ही प्रज्ञा कहते हैं। भगवान् बुद्ध कहते हैं :—

**नास्ति ध्यानम् अप्रज्ञस्य प्रज्ञा नास्ति अध्यायतः।**
**यस्मिन् ध्यानं च प्रज्ञा च तस्य निर्वाणमन्तिके।**

अर्थात्—

**नहीं निर्ध्यानको प्रज्ञा, ध्यान अप्राज्ञ को नहीं।**
**ध्यान हो और प्रज्ञा हो, तो निर्वाण समीप है॥**

यह समस्त सिद्धियाँ ईश्वरकी कृपासे आती हैं। ईश्वरकी कृपाके बिना कुछ भी संभव नहीं है। आत्म-ज्ञान तो बड़ी चीज है। ईश्वरकी कृपाको किसी चालाकीसे, तिकड़मसे आकर्षित नहीं किया जा सकता है। सद्गुरु भी ईश्वरकी कृपासे मिलता है। ईश्वर अन्तर्यामी है। सब कुछ जानता है। वह स्वयं यह निश्चित करता है कि कौन कब कितनी कृपाका पात्र है। पात्रता भी वही उत्पन्न करता है। जीवको मात्र इतना करना है कि निश्चल भावसे ईश्वरका स्मरण करे, प्रपन्न हो और अपनेको उसके हवाले कर दे। मन्त्रयोगका कार्य इतना ही है कि इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न करनेमें योग दे जिससे ईश्वर साधकपर कृपा करें। कृपा होनेपर सब कुछ अपने आप ही होने लगेगा।

अस्पृश्यता-निवारणके लिए केवल नारा लगाना व्यर्थ है, हरिजनोंके लिए आध्यात्मिक कष्टका अनुभव करके स्वार्थ-त्यागपूर्वक सत्प्रयास आवश्यक है —

# अस्पृश्यता और उसके निवारण के उपाय

जयदयाल डालमिया

★

धर्मशास्त्रोंमें किसको अस्पृश्यता माना है और किसको नहीं—इस विवादमें पड़नेसे झगड़े और कटुता बढ़नेके अतिरिक्त कोई लाभ नहीं होगा। भारतवर्षमें हिन्दूधर्मके अन्तर्गत अनेक सम्प्रदाय हैं। उन सभी सम्प्रदायोंके आचार्योंने अपने-अपने मत और विचारके अनुसार एक ही मूल ग्रंथके विभिन्न अर्थ किये हैं। गीता और उपनिषद्-जैसे विश्वमान्य ग्रंथरत्नोंके भी विभिन्न आचार्योंने विभिन्न अर्थ किये हैं। उन अर्थोंपर लड़नेकी बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। भारत-सरकारके केन्द्रीय मन्त्री, श्रीकर्णसिंहजीने उपनिषद्के एक वाक्यका उद्धरण देते हुए पटनाके द्वितीय विश्व-हिन्दूधर्म-सम्मेलनमें अपने उद्घाटन-भाषणमें बताया था कि जिस प्रकार नदियाँ अलग-अलग स्थानोंसे उठती हैं और वे अवश्य ही एक महासागरको पहुँचती हैं, उसी प्रकार जितने धर्म हैं वे उत्पन्न भले ही अलग-अलग स्थानोंमें हुए हों, उन सबका लक्ष्य एक ही है।

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिल-नाना-पथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

(शिवमहि० ७)

अर्थात्—वेदत्रयी, सांख्य, योग, शैवमत, वैष्णवमत—भिन्न-भिन्न मार्ग हैं और सभी अपनी-अपनी विशेषता रखते हैं, प्रत्येकको विभिन्न लोगों द्वारा श्रेष्ठ एवं हितकर बताया जाता है। अपनी-अपनी रुचिके भेदसे कोई सरल मार्ग ग्रहण करता है, कोई कठिन टेढ़ा-मेढ़ा;

अन्तमें सभी नदियाँ जैसे गंभीर समुद्रमें पहुँचती हैं, वैसे ही सभी साधक एक ही लक्ष्यपर पहुँचते हैं।

अतः धर्मशास्त्रोंके विधानोंको लेकर लड़ना व्यर्थ है। जो अधिक प्रतिभाशाली होगा, तर्कमें अधिक पटु होगा, वही दूसरे पक्षको दवाकर अपने पक्षको सिद्ध कर देगा।

विचारणीय प्रश्न ये हैं कि हमारे समाजमें जिनको अस्पृश्य कहा जाता है, जिन्हें महात्मा गांधीने सम्माननीय विशेषण 'हरिजन' दिया है, उनके प्रति हमारा व्यवहार कैसा हो ? उन्हें जो भी विशेषण दिया गया हो या जो भी विशेषण हम उनको आज दें, उससे कुछ वनता-विगड़ता नहीं है। वनना-विगड़ना तो हमारे भावोंपर निर्भर करता है।

महात्मा गांधीके वाक्य हैं ( देखिये—'मेरे सपनोंका भारत' मार्च १९६२ संस्करण )—

"आदमी-आदमीके बीच ऊंच-नीचका भेद भी मैं नहीं मानता। हम सव पूरी तरहसे वरावर हैं। **लेकिन वरावरी आत्माकी है, शरीरकी नहीं।** इसलिए यह मानसिक अवस्थाकी वात है।....कोई भी मनुष्य अपनेको दूसरेसे ऊँचा मानता है, वह ईश्वर और मनुष्य--दोनोंके सामने पाप करता है।" ( पृष्ठ २६२-२६३ )

"अस्पृश्यता जाति-व्यवस्थाकी उपज नहीं, **उस ऊँच-नीच-भेदकी भावनाका परिणाम है**....इसलिए **अस्पृश्यताके खिलाफ हमारा आक्रमण इस ऊँच-नीचकी भावनाके खिलाफ ही है।**" ( पृ० २६४ )

विचार कीजिये कि साधारण अवस्थामें हम घरके अपनेसे वड़े वुजुर्गसे कोई हीन सेवा ले सकते हैं क्या ? लेकिन असहाय वाल्यावस्थामें या अस्वस्थ-अवस्थामें लेते भी हैं। वचपनमें हमारी माँ हमारा पाखाना साफ करती थी, लेकिन वड़ी अवस्था होनेके वाद भी क्या हम उस माँसे वैसी सेवा करवा सकते हैं ? साधारण अवस्थामें हम अपने पैर दववाना, जूते पालिश करवाना, कपड़े धुलवाना जिस प्रकार अपने नौकरी-पेशा सेवकसे करवा सकते हैं, उसी प्रकार अपने घरके वड़ोंसे नहीं करवा सकते। इसमें ऊँच-नीचकी भावना भी हो सकती है, कामके वँटवारेकी भावना भी हो सकती है। यदि किसी कारण-विशेषसे अथवा लापरवाहीसे ही किसी नौकरी-पेशा सेवकने कभी अपने किसी कर्तव्यको पूरा नहीं किया तो जिस प्रकार हम उसपर अपना रोष प्रकट करते हैं, वैसा अपने वड़े वुजुर्गोंपर भी कर सकते हैं क्या ? यही ऊँच-नीचकी भावना है। यदि सव स्थितिमें हम साम्यावस्थामें रहते हैं और अपना सन्तुलन नहीं खोते तथा नीची श्रेणीका किसीसे काम लिया जाता है तो वह योग्यताके अनुसार कामका वँटवारा भी कहला सकता है, ऊँच-नीचका भाव नहीं। कभी-कभी देखनेमें आता है कि कोई-कोई अपने वड़े वुजुर्गपर भी अपना सन्तुलन खो वैठता है, वहाँ यह स्पष्ट ज़ाहिर होता है कि वह सन्तुलन खोनेवाला व्यक्ति अपने आपको वड़े-वुजुर्गसे अधिक योग्य और वुद्धिमान मानता है। यही ऊँच-नीचका भाव है—यही अहंकार है, जो सव वुराइयोंकी जड़ है।

कामका वँटवारा वैसे कामोंमें-से ही हुआ करता है जो काम हम स्वयं भी कर सकते हों और करनेको तैयार हों, लेकिन समाजपर कोई भार वनकर न रहे, इस विचारसे योग्यताके

अनुसार सबको कामपर लगाये रखनेके लिए काम बाँटा जाय। जहाँ ऐसा काम हो जिसको हम करना ही न चाहें और दूसरेसे ही कराना चाहें, वहीं ऊँच-नीचका भाव आ जाता है। जैसे अपने पाखानेकी सफाई कोई नहीं करना चाहता, क्योंकि वह अपने आपको बड़ा समझता है। अतः महात्मा गाँधीके शब्दोंमें 'वह ईश्वर और मनुष्य—दोनोंके सामने पाप करता है।'

सबसे अधिक घृणित व्यापार (पेशे) आज दो ही देखनेमें आते हैं—एक मेहतर (भंगी)का और दूसरा कसाईका। कसाईका पेशा तो घृणित होनेके साथ-साथ पापका और अधर्मका भी है। कितने आश्चर्यकी बात है कि आधुनिक प्रगतिशील समाजवाले लोग भी बड़े-बड़े यन्त्रवाले कसाईखानोंके मालिकोंसे, जो ऊपरसे देखनेमें साफ-सुथरे और आकर्षक लगते हैं, सम्पर्क रखनेमें, उन्हें स्पर्श करनेमें, उन्हें अपने साथ बैठाकर टेबुलपर खिलानेमें आपत्ति नहीं करते किन्तु भंगीको यह छूट देनेको तैयार नहीं।

यदि हम सचमुचमें अस्पृश्यता अर्थात् ऊँच-नीचका भेद मिटाना चाहते हैं तो जिन कारणोंसे किसी वर्गको नीचा या अस्पृश्य समझा जाता है, उन कारणोंको दूर करें। किसीको छूकर स्नान नहीं करनेसे ऊँच-नीचका भेद-भाव मिट गया, सो बात भी नहीं है। यह निर्भर करता है—हमारा उसके प्रति क्या भाव है, उसपर। नयी दिल्लीसे प्रकाशित हिन्दीके 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान'के दिनांक ४ मई १९६९ के सम्पादकीय लेखमें सम्पादक महोदयने जो लिखा, उसपर ध्यान दीजिए। वे लिखते हैं—

"जिन्हें अछूतोंकी आर्थिक-सामाजिक समस्यासे कोई आध्यात्मिक कष्ट न होता हो, वे मात्र इसीसे आधुनिक और उदार नहीं कहलाये जा सकते कि वे अछूतका स्पर्श करनेके बाद नहाना जरूरी नहीं समझते। संविधानमें कोई व्यवस्था करके या किन्हीं दो-चार धार्मिक रूढ़ियोंको सार्वजनिक भाषणमें अमान्य ठहराकर ही समाजको बदला नहीं जा सकता। **हरिजनोंके उद्धारके नामपर अबतक हम कुछ सिद्ध कर पाये हैं तो अस्पृश्य बनाम सवर्णकी राजनीति और चन्द साधन-सम्पन्न हरिजनोंकी उत्तरोत्तर समृद्धि**। गांधीवादी कार्यक्रमके अनुसार हरिजनों और सवर्णके एकीकरणका सपना अब भी सपना ही बना हुआ है।"

इसमें एक भी वाक्य असत्य हो तो सरकारी सत्ताधारी नेता या कोई राजनैतिक नेता या सामाजिक नेता बतानेकी कृपा करें।

वायुयानसे चन्द्रलोककी सैर कर आना, प्रातःकाल भारतवर्षमें जलपान करके यात्रा पर वायुयान द्वारा प्रस्थान करके दोपहरको लन्दनमें भोजन करना और रातको न्यूयार्कमें भोजन करना मात्र 'वसुधैव कुटुम्बकम्' नहीं हो सकता। जैसे अपने रक्तसे सम्बन्धित कुटुम्बीके दुःख-दर्दके समय हमको कोई सैर-सपाटा या मौज-मजा अच्छा नहीं लगता, वैसे जितनी दूर तक हम इस प्रकारका आध्यात्मिक कष्ट अनुभव करते हैं, उतनी दूर तक ही हमने 'कुटुम्ब' समझा है। सच बात तो यह है कि आधुनिक प्रगतिशील समाजके लोग तो अपने बहुत निकट कुटुम्बीको यहाँतक कि अपने माँ-बापको भी बीमारीके कष्टमें नर्स और डाक्टरके

भरोसे छोड़कर अपनी पत्नीसहित कश्मीर या अन्य पहाड़ोंकी या अन्य मनोरम स्थानोंकी सैर करने चले जाते हैं, पड़ोसी या समाजकी परवाहकी बात तो बहुत दूरकी है।

हमारे अपने कुटुम्बमें कोई आदमी पानीके अभावमें गरमीमें प्यासा मर रहा हो तो क्या हमें टबमें पानी भर उसमें स्नान करना अच्छा लगेगा ? हमारे अपने कुटुम्बमें किसीके पास वस्त्रका अभाव हो और फटे-पुराने वस्त्रोंसे किसी प्रकार गुजारा कर रहा हो तो क्या हमको नित्य नये फैशनके वस्त्र बनवाने अच्छे लगेंगे ?

'वसुधैव कुटुम्बकम्'के अन्तर्गत हमारा हरिजन-समाज तभी लिया गया समझा जायगा, जब हम उनके आवश्यकीय अभावके लिए आध्यात्मिक कष्टका अनुभव करके, जबतक उनके दुःख-दर्द दूर न कर दें तबतक हमको कोई ऐश-आराम और फैल-फितुरी अच्छे न लगें।

वास्तवमें अस्पृश्यता-निवारण तभी हो सकता है जब उन अस्पृश्य कहे जानेवालोंसे घृणित सेवा लेनी बन्द करदें और उनकी आजीविकाका तथा सुख-सुविधाका दूसरा साधन करदें। यदि यह नहीं कर सकते तो लाखों नारे लगानेपर भी उनका स्पर्श होनेपर स्नान नहीं करनेपर भी हम उनकी अस्पृश्यता मिटा नहीं सकते। जबतक भंगीके व्यापार ( पेशे )से हमको घृणा है तबतक उस पेशा करनेवालेके प्रति भी घृणा मिटाना बहुत ही कठिन काम है, असम्भव कहा जाय तो भी अत्युक्ति नहीं होगी।

महात्मा गाँधीके परलोकवासके बाद २०-२१ वर्षोंके दौरानमें हरिजनोंके लिए आँसू बहाने वालोंमें-से एक भी व्यक्ति सामने नहीं आया है जिसने महात्मा गाँधीकी तरह अपने पाखानेकी सफाई भंगीसे करानी बन्द करके स्वयं अपने आप करनी आरम्भ कर दी हो। यदि यह कहा जाय कि समयके अभावके कारण उस साधारण काममें समय नष्ट कैसे किया जाय तो एक भी आदमी ऐसा हो जिसके पास समयका अभाव हो तो वह अपनी सारे दिनकी दिनचर्या नोट करके प्रमाणित करके दिखावे कि समयका अभाव है। महात्मा गांधी अपने एक-एक मिनटके समयका हिसाब रखते थे और अपना एक मिनटका समय भी व्यर्थ नष्ट नहीं करते थे। कई बार तो वे एक साथ दो-दो काम किया करते थे—जैसे चरखा कातना और आये हुए व्यक्तिके साथ बात-चीत करके विचार-विमर्श करना। समयाभावका तो केवल बहाना है। Where there is a will there is a way, अर्थात् जब मनुष्य किसी कामको करना चाहता है तो उसके लिए मार्ग भी मिल ही जाता है।

औरोंकी बात तो छोड़िये, हरिजनोंके प्रतिनिधि जो हरिजन, केन्द्रीय सरकारके मन्त्री पदपर बैठे हैं उनको भी अपने हरिजन भाइयोंके साथ 'कुटुम्बकम्' की भावना नहीं है। यदि होती तो उनको हरिजन भाइयोंके दुःख-दर्दमें आध्यात्मिक कष्ट होता और उनसे कदापि ऐश-आराम नहीं भोगे जाते।

यदि हरिजनोंके प्रति ऊँच-नीचके भाव-रूप अस्पृश्यता मिटानी है तो केवल राजनैतिक नारे लगाने छोड़कर उनके दुःख-दर्दका आध्यात्मिक कष्ट अनुभव करके ऐश-आराम और मौज-मजाको छोड़िये और उन बचे हुए पैसोंसे उन हरिजनोंके दैनिक जीवन-यापनके जितने कष्ट हैं

उनको दूर कीजिये, जैसे उनके लिए जलकी व्यवस्था, इतनी आजीविकाकी व्यवस्था जिससे उन्हें भूखे पेट न सोना पड़े, इतना-सा वस्त्र जिससे उनका शरीर ढका रहे और जाड़में ठिठुरें नहीं, इतनी-सी छायादार झोपड़ी जिसके नीचे धूप-वर्षा और सर्दीसे अपना बचाव कर सकें—इतना तो कमसे-कम होना ही चाहिए। वे सिनेमा-जैसे आमोद-प्रमोद या चाट-चटनीकी जिह्वा-लिप्सा नहीं चाहते। इतना करनेपर ही उनके प्रति ऊँच-नीच भावरूपी अस्पृश्यता कुछ अंश तक दूर होगी। इसके बाद इनकी थोड़ी और सुख-सुविधाकी ओर ध्यान देना जरूरी होगा। कुछ शिक्षा देकर संसारका ज्ञान भी कराना होगा। लेकिन पहली आवश्यकता है इनको (१) पेटभर-भोजनकी, (२) सर्दीसे बचनेके लिए और शरीरकी लज्जा निवारणके लिए वस्त्रकी, (३) धूप-वर्षा-सर्दीसे रक्षा पानेके लिए छायादार घरकी, जो स्वराज्य मिले लगभग २२ वर्ष हो जानेपर भी केन्द्रीय राजधानी-नगर दिल्लीके हरिजनोंके लिए भी अभी तक पूरी नहीं की गयी जबकि वहाँ नित्य नयी गगन-चुम्बी अट्टालिकाएँ तो बन ही रही हैं। सचमुच यह बहुत ही शर्मकी बात है समाजके लिए और उससे भी बढ़कर सरकारके लिए।

इस समय अस्पृश्यता निवारण-सप्ताह राजधानी दिल्लीमें और दिल्लीके आस-पास मनाया जा रहा है, जिसमें प्रदर्शन-भोज आदि हो रहे हैं। राजनैतिक हरिजनोंको मिठाइयाँ खानेको मिल रही हैं। इसमें लाखों-लाखों रुपये खर्च हो रहे हैं। समाचार-पत्रोंमें खबरोंके द्वारा प्रचार करके नेता लोग नामवरी कमा रहे हैं। यदि वे ईमानदारीसे यह समझते हैं कि इससे हरिजनोंके दु:ख-दर्द दूर हो जायँगे तो इसको एक सप्ताह ही क्यों, नित्यप्रति जारी रखें। दिल्लीके अंग्रेजी दैनिक 'टाइम्स आफ इण्डिया'के दिनांक १७ मई १९६९ के अंकमें पृष्ठ ३ पर प्रकाशित समाचारके अनुसार चार बच्चोंकी माँ हरिजन-महिला अंगुरीने अपने विचार प्रकट किये हैं, वे स्टाफ-रिपोर्टरके शब्दोंमें इस प्रकार हैं—'Instead of wasting money on this function, why could not sarkar give us water?' अर्थात्—इस तरहके जलसेपर रुपया बर्बाद करनेके बजाय सरकार हमको जल क्यों नहीं दे सकती?

पिछले दिनों फरीदाबादमें कांग्रेसका ७२वाँ अधिवेशन अप्रैलके अन्तिम सप्ताहमें हुआ था। टाइम्स आफ इंडिया प्रकाशन, हिन्दी साप्ताहिक 'दिनमान'के दिनांक ४ मई १९६९ वाले अंकमें, पृष्ठ १४ पर तीसरे कालममें प्रकाशित विशेष संवाददाताकी रिपोर्टके अनुसार मंत्रियोंके लिए बनाये गये पेशाब-घरोंपर हजारों रुपये खर्च किये गये थे, लेकिन उन पेशाब-घरोंको साफ करनेवाले भंगियोंके लिए झुग्गियोंपर तथा उनकी सुख-सुविधापर कितना रुपया खर्च किया गया था, इसको भी जरा बताया जाय। उस संवाददाताने यह भी बताया है कि फरीदाबादके 'हालीडे होटल'के रैस्टोरेंट और 'बार' (जहाँ शराब आदि पेय दिये जाते हैं) को इससे पहले शायद ही कभी इतना गुलजार पाया गया हो। पाठक अपना-अपना निर्णय करें कि हरिजनोंके लिए नारे लगानेवालोंके हृदयमें उनके प्रति कितना आध्यात्मिक कष्ट है। ●

कहानी

## भक्त विल्वमङ्गलके पूर्व जीवनका दिव्य परिवर्तन—

# रूपान्तर

श्री बाबूलाल 'श्रीमयङ्क'

अन्धकारका महार्णव, घन-घटाओंके बीच कसौटीपर कसी हुई स्वर्णमयी रेखाके समान दामिनी दमक रही है। क्षण-क्षणमें सांसारिक दृश्य आँखोंके सामने आते और तत्क्षण ओझल हो जाते हैं। आँधी अपने पूरे वेगसे चल रही है। चारों ओर जल-ही-जल दृष्टिगोचर होता है। सरिताएँ सारी सलिलराशिको अपनी ओर खींचकर उसे सागरकी ओर लिये जा रही है। चारो ओर भयङ्कर सन्नाटा है। किसीको बाहर निकलने की हिम्मत नहीं होती। फिर भी एक युवक विल्वमङ्गल निरन्तर इस तूफानसे जूझता हुआ आगे बढ़ता ही जा रहा है। किन्तु आगे एक विशाल नदीको देखकर पैर ठिठक गये। जलकी बाढ़ आयी है। कहीं आर-पार नहीं सूझता। ऐसे निशीथ-कालमें नाववाले भी कैसे रहते। पार जानेका कोई उपाय नहीं था।

अब क्या किया जाय। विल्वको बड़ी चिन्ता थी। उसकी प्रेयसी चिन्तामणि बड़ी बेचैनीके साथ उसका इन्तजार कर रही होगी। वह हजार कष्ट सहन करके भी उसके पास अवश्य जायगा, किन्तु यह कैसे संभव हो? उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी, अन्धकारके महार्णवमें सब कुछ विलीन था।

साधना कभी असफल नहीं होती है, निरन्तर प्रयत्न करनेके बाद उसे गह्वर में लकड़ी का अटका हुआ टुकड़ा दिखायी दिया, जो उसके वजनकी क्षमतासे अधिक था। उसने उसीको पकड़ा और आसानीसे नदी पार हो गया। उसका हृदय आनन्दसे उछल पड़ा। अब उसकी प्रेयसी उसे देखकर अत्यन्त उल्लसित होगी तथा वह अपने नयनोंकी और मनकी प्यास बुझायेगा। इन्हीं विचारोंमें उलझा हुआ वह कब नगरके पास पहुँचा, कोई भान नहीं हुआ। उसने देखा नगर सब ओर से बंद है। सब लोग सुखकी नींद सो रहे हैं।

किसी तरह वह अपनी प्रेयसी, नगरवधू चिन्तामणिके मकानके सामने पहुँचा। दरवाजा बंद था। उसे वातायनपर रस्सी-जैसा कुछ लटकता दिखायी दिया। उसकी बाँछे खिल गयीं, उसने सोचा—'देखो, वह मेरा कितना खयाल रखती है? गृहतक पहुँचनेके लिए उसने कितना अच्छा प्रबन्ध कर रखा है।'

मोहमयी मदिरासे मतवाला विल्वमङ्गल खिड़कीसे लटके हुए सर्पको रस्सी समझकर उसे पकड़ अपने गंतव्य स्थानको पहुँच गया।

इतनी रात गये विल्वको एकाएक अपने सामने पाकर चिन्तामणि चकित रह गयी। उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि उसका प्रेमी विल्व ही है। उसने किंचित् आखोंपर जोर डालकर ठीकसे पहचाना। वह कुछ कहे, इसके पहले ही विल्व बोल उठा—'लो प्रिये ! मैं आ गया।'

चिन्ताने मौन भंग करते हुए कहा—'तुम इतनी रात गये यहाँ तक कैसे आये ?'

'ओह ! यह कोई पूछनेकी बात है। तेरे प्यारका आकर्षण मुझे यहाँ तक खींच लाया' मुस्कराकर विल्वने कहा।

चिन्ता बोली—'मुझे पूरा हाल सुनाओ कि तुम यहाँ तक कैसे पहुँच सके ?'

विल्वने बड़े उल्लासके साथ सारा हाल कह सुनाया।

चिन्ताको आश्चर्य हुआ। उसने कहा—'चलो मुझे वे सब स्थान दिखाओ, जहाँसे, जिस रास्तेसे तुम यहाँ तक पहुँच सके।'

विल्व दीपक लेकर आगे-आगे चला, चिन्तामणि भी पीछे-पीछे चली।

वातायन पर रस्सीकी भाँति लटका हुआ महाविषधर सर्प और नदीतटपर लकड़ीके टुकड़ेके समान दीखनेवाला दुर्गन्ध शव देखकर चिन्तामणिका हृदय विरक्तिसे भर गया। वह बोली—"विल्व ! तू इतना मोहान्ध है कि सर्पको रस्सी समझ बैठा ? अरे ! जिस शरीर पर तू इतना आसक्त है, उसका अन्तिम परिणाम यह दुर्गन्ध शव ही तो है ! यदि इतना प्यार तूने श्यामसुन्दर श्रीकृष्णसे किया होता तो तेरा बेड़ा पार हो जाता।" इतना कहकर वह फूट-फूट कर रोने लगी।

इस करुण क्रन्दनने विल्वके हृदयको झकझोर दिया। उसकी सोयी हुई चेतना जाग गयी। उसकी आँखोंके सामने जीवनके सारे घृणित दृश्य चलचित्रके समान फिर गये। उसे ऐहिक जीवनसे घृणा-सी हो गयी। उसका अन्तःप्रदेश तीव्र वैराग्यसे भर गया। उसकी अन्तरात्मा प्यारे श्यामसुन्दरसे मिलनेको तड़प उठी। उसने निश्चय कर लिया कि 'अब वह श्यामसे मिलकर ही रहेगा, इस जीवनको उनके लिए उत्सर्ग कर देगा।' बस, वह चल पड़ा आदि गुरु चिन्ताके चरणोंमें नमस्कार करके और वह जड़वत् खड़ी-खड़ी देखती रह गयी।

कामी विलासी विल्वमंगलका रूपान्तर हो गया। अब वह सन्त-शिरोमणि तथा श्याम-सुन्दरके गुणोंका गायक बन गया था। यह सब होने पर भी हृदयका दुर्बल संस्कार अभी घुल नहीं पाया था। एक दिन वह गंगातटपर पहुँचा। नगरसे थोड़ी दूर सुन्दर घाट बने थे। घाटों पर प्रातःकाल बहुत-से स्त्री-पुरुष स्नान कर रहे थे।

विल्वकी दृष्टि कुछ दूरपर नहा रही अर्ध-नग्न, गौरवर्ण, एक सुन्दरीपर टिक गयी। रूपके उस आकर्षणने उसके धैर्यको विचलित कर दिया, वह अपने आपको संभाल न सका।

वह सुन्दरी युवती जब नहाकर घरकी ओर चली, तब विल्वमङ्गल भी चुम्बकसे आकृष्ट लोह-खण्डकी भाँति उसकी ओर खिंचता चला गया। युवतीने अपने घरमें प्रवेश किया। विल्व भी उसके साथ-साथ घरमें घुसना ही चाहता था कि सिंहपौरपर गृहस्वामी मिल गया। उसने युवकके गेरुए वस्त्र देख दण्डवत् कर उसका उचित सम्मान किया। फिर हाथ जोड़कर बोला—'मेरे योग्य कोई सेवा हो तो कहिए महाराज।'

कामोन्मत्त विल्वने कहा—'मुझे दूसरा कुछ नहीं चाहिए, मैं सिर्फ तुम्हारी चन्द्रमुखी पत्नीका मुख एक बार देखना चाहता हूँ।'

घर पर पधारे साधुका अतिथ्य-सत्कार और उसकी यह बेढंगी मांग, विषम धर्म-संकट आ गया। कुछ सोचते हुए गृहस्वामीने कहा—'अच्छा, महाराज! मैं अपनी पत्नीसे पूछकर आता हूँ, तब तक आप यहीं रुकें।

पत्नीने स्वामीकी बात स्वीकार कर संन्यासीको अन्दर ले आनेका आदेश दे दिया।

विल्वके आनेपर पत्नीने उसको भोजन कराया दक्षिणा आदिसे संतुष्ट किया और कोमल शय्यापर उसको बिठलाकर उनके चरण पखारती हुई बोली—'हे स्वामी संन्यासी अपने योग्य सेवाके लिए आदेश दो, मैं हर तरहसे सेवाके लिए प्रस्तुत हूँ।'

विल्वके नेत्र उसके चन्द्रमुख पर टिक गये। वह उसको एकटक निहारने लगा और सभी बातोंमें उसकी चिन्तामणिसे तुलना करने लगा। परन्तु अन्तिम दृश्यने स्मृतिपट-पर अंकित हो पुनः नारकीय जीवनकी याद दिला दी। अपनी चेतनामें लौटकर वह बोला—'माँ! मुझे दो सुइयाँ तत्क्षण लाकर दो।'

गृहस्वामिनीने तत्काल दो सुइयाँ प्रदान कीं।

विल्व उन्हें चूमकर आँखोंमें घुसेड़ते हुए बोल उठा—'हे चर्मचक्षुओ! आज तुम्हें जितना भी रूप-सौन्दर्य देखना है, देख लो।' यों कह उसने अपनी दोनों पुतलियोंको नष्ट कर लिया। फिर बोला—'हे गोरे चामपर रीझनेवाले मोह-जालमें फँसानेवाले नेत्रो! सदाके लिए नष्ट हो जाओ। अब तुम्हारी आवश्यकता नहीं है। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।'

यह दृश्य देखकर वह स्त्री भयसे काँप उठी और अपने स्वामीको बुलाने गयी, लेकिन उनके आनेके पहले ही विल्व यह गाते हुए निकल पड़े—

**प्रभु मेरे औगुन चित न धरो ॥**

## [ ४ ]

अब विल्वके लिए बाह्य संसार नष्ट हो चुका था, किन्तु आन्तरिक संसार दिव्य प्रेमसे परिपूर्ण एवं भक्तिरससे भावित हो चुका था। उनके दिव्य नेत्र खुल गये। शुद्ध सात्त्विक प्रेमकी सरिता उमड़ पड़ी। हृत्पुरुषकी क्षीण आवाज तीव्रताके साथ फूट निकली—

**अँखियाँ हरि दरसनकी प्यासी।**

यही है विल्वका रूपान्तर। वह मोहसे दूर हटकर दिव्य प्रेममें आरूढ़ हो गया।

●

# शङ्खनाद

वीर ! आज शङ्खनाद तुम सुनो ।

भूलके निशाकी रंगरेलियाँ,
साथ सब उठो सखा-सहेलियाँ ।
इस नये विहानके प्रकाशमें,
लक्ष्यकी निकल पड़ो तलाशमें ।

वाँसुरीकी तान सुन चुके बहुत,
वीर ! आज शङ्खनाद तुम सुनो ॥

हाथ-हाथमें धनुष हो वाण हो,
शौर्यसे समृद्ध प्राण-प्राण हो ।
पंथमें पहाड़ हो निडर चलो,
ठोंकरोंसे ठोंक ठीक कर चलो ।

कोकिलोंके गान सुन चुके वहुत,
धीर ! आज सिंहनाद तुम सुनो ॥

भूतकालमें स्वदेश था बढ़ा,
गौरवाद्रिके सुश्रृङ्गपर चढ़ा ।
किन्तु आजकी विलोक दुर्दशा,
पड़ रही कशा अतीव कर्कशा !

गत अतीत-गीत गा चुके बहुत,
वर्तमानके विवाद अब सुनो ॥

शान्त शौर्य व्याप्त आज क्लीवता,
देशका भविष्य ! आह ! क्या पता ?
शत्रु सिर उठा रहा, कुचल अरे !
देर है असह्य शीघ्र चल अरे !!

शान्तिकी रटें लगा चुके वहुत,
क्रान्तिके विगुल-निनाद अव सुनो ॥

'राम'

एक दृष्टिकोण —

# साधु और राष्ट्रसेवा

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

आज जनता राजनीतिक दलवन्दीसे संत्रस्त है। जाति, सम्प्रदाय, प्रान्त, भाषा और इन सबसे वड़ा दलवन्दीका दलदल। लोगोंके सौमनस्य, संगठन और मेल-मिलापको संघर्ष निगल रहा है। कौन, किसको अपने स्वार्थ-साधनका मुहरा बना लेगा, पता नहीं चलता। अविश्वास और वञ्चनाका वातावरण दिनोंदिन और भी विषाक्त होता जा रहा है। जनता राजनीतिक नेतासे डरती है, राजनीतिसे डरती है। पिछली जनवरीमें मैं जबलपुर गया था। पन्द्रह दिन रहा। प्रतिदिन १५-२० सहस्र जनता आती। शोभा-यात्रामें लक्षाधिक। मैंने पूछा—'लोगोंका इतना झुकाव क्यों है?' लोगोंने कहा—'यहाँ शान्ति मिलती है। राजनीतिक सभाओंमें राग-द्वेष, संघर्ष, विघटन और वैमनस्यकी प्रेरणा मिलती है। कोई भी जान-बूझकर तो अपनेको उद्विग्न नहीं करना चाहता।'

आज विश्वकी परिस्थिति विलक्षण है। मजहब लड़ते हैं—धर्मका मर्मभेदन होता है। भाषाएँ टकराती हैं—ज्ञानका अनादर होता है। प्रान्त छीना-झपटी करते हैं और राष्ट्र छिन्न-भिन्न होता है। पार्टियाँ जीतती हैं और जनता हारती है। परिस्थिति गम्भीर है। धीरताके साथ विचार करना पड़ेगा। अब संकीर्ण-दृष्टिसे जीवन व्यतीत करनेका समय नहीं है। संचार-साधनोंकी वृद्धि और समृद्धिसे आज सम्पूर्ण विश्व एक गृह और परिवारके समान निकट आगया है। महाद्वीपोंकी दूरी मिट गयी है। विज्ञानका चमत्कार क्षण-क्षणमें, कण-कणको वदलकर दिखानेमें समर्थ हो रहा है। अब चारों ओरसे आँख बन्द रखकर अपने घर-घरोंदेमें नहीं रहा जा सकता।

प्रायः सम्पूर्ण विश्व दो गुटोंमें बँट गया है। एक ओर एक वर्ग सम्पूर्ण विश्वकी जनताको अपने पक्षमें संगठित करनेके लिए प्रयत्नशील है, तो दूसरी ओर दूसरे वर्गकी कार्य पद्धति अपने पञ्जेको मजवूत करती जा रही है। एक विचार-धाराके लोग ईश्वर और धर्मको नहीं मानते। वे धर्मको विष मानते हैं। केवल श्रम और अर्थके आधारपर जनताको एक मञ्चपर लाना चाहते हैं। दर्शन, और धर्म संस्कृतिका आमूल-चूल विनाश करना चाहते हैं। दूसरी ओर दूसरा वर्ग धन और भोगकी वासनासे आक्रान्त है। जो कुछ उसकी मुट्ठीमें है, उसे

गरीबोंको देना नहीं चाहता। उनके लिए सामान्य जीवन बितानेकी व्यवस्था भी नहीं करना चाहता। केवल वासनापूर्ति और संग्रहके अभिमानको ही महत्त्व देता है। उनकी ओरसे कुछ मजहबी लोगोंको भी धनकी सहायता मिलती है और उनके द्वारा छल-त्रल आदि अनेक अनुचित उपायोंके द्वारा एक मजहब-विशेषमें गरीबोंको आकृष्ट किया जा रहा है, उनकी गरीबीका अनुचित लाभ उठाकर। कुछ लोग इसके अपवाद भी हैं, जो धन्यवादके पात्र हैं। गरीबोंके लिए विद्यालय, चिकित्सालय बनें, उनके रहन-सहनका स्तर ऊँचा हो। वे सुविधा, सुख, समृद्धि और सर्वविध उन्नतिमें समान अधिकार प्राप्त करें; यह भला कौन सहृदय नहीं चाहेगा। परन्तु उनकी गरीबीका दुरुपयोग करके उनके विश्वास, संस्कार और परम्पराओंका नाश करना कहाँतक उचित है? इसपर विचार करना चाहिए।

इस प्रकार हमारे-समाजपर दुहरे संकटकी घनघोर घटा छायी हुई है। एक ओर अनीश्वरवादी नास्तिक, हिन्दूसमाजका अन्त करना चाहते हैं तो दूसरी ओर मजहबी और विदेशी। हिन्दू-समाजको छिन्न-भिन्न करनेका दुहरा षड्यन्त्र चल रहा है।

एक तीसरी बात ध्यान देने योग्य है कि जो लोग विदेश-यात्रा करके आते हैं, वहाँसे भोग-विलासकी वासनासे सम्मोहित होकर लौटते हैं। वे कहते हैं और करते हैं कि भोग-विलास ही सब कुछ है, धर्म और दर्शन तो निःसार हैं। इनकी एक-एक क्रिया हीनभावनाकी सूचक होती है। वे भारतीय संस्कृति और जनताको हीन समझते हैं और बात-बातमें भारतीयताको कोसते हैं। 'हिन्दुस्तानी टाइम', 'हिन्दुस्तानी आदमी' सब गलत हैं। ऐसे लोग जनताके चित्तको विषाक्त कर रहे हैं। अपनेको हीन समझनेवाला पुरुष अपनी हीनतासे अभिभूत हो जाता है और अपने उत्साह और आदर्शसे च्युत हो जाता है।

जिन्हें कोई पद या अधिकार मिल गया है, वे अपनी कुर्सीपर जमकर बैठ गये हैं। उनका राष्ट्रकी उन्नति और जनताकी प्रगतिसे कोई सम्बन्ध नहीं है। वे धर्म, ईश्वर, संस्कृतिको तुच्छ समझते हैं। उनका कोई सिद्धान्त नहीं है। वे वैयक्तिक अथवा दलीय स्वार्थसे अन्धे होकर राष्ट्रके हितसे विमुख हो गये हैं। उनकी ओर देखनेपर लगता है कि राष्ट्रका भविष्य अन्धकारमय है।

हमलोग किसी पार्टी के नहीं हैं—निष्पक्ष हैं। किसीके स्वार्थमें हमारा स्वार्थ निहित नहीं है। ब्रह्मवेलामें उठकर शुद्ध हृदयसे ध्यान करते हैं और विचार करते हैं कि हमारा राष्ट्र किस दिशामें जा रहा है? हमारी संस्कृतिका भविष्य क्या है? कहना न होगा कि अपने राष्ट्रकी मति, गति और रतिपर विचार करके हम दुखी हैं। सम्पूर्ण विश्वको आध्यात्मिक एवं चारित्रिक शिक्षा देनेवाला यह धर्म-प्राण, पवित्र देश आज किस-किस संकटापन्न दशामें पड़ गया है। यह अपने मार्गसे भटक रहा है। इस समय इसे मार्ग-निर्देशकी जितनी अपेक्षा है, सम्भवतः अतीतमें ऐसी कभी न रही हो।

आप जानते हैं हिन्दू-समाजकी धार्मिक दृष्टि अत्यन्त उदार रही है। मैं दावेके साथ कह सकता हूँ कि अपनी-अपनी उदारताके दावे करनेवाले लोग ठण्डे हृदयसे इस श्लोकके अर्थपर विचार करें—इसकी जोड़का दूसरा वचन और कहीं नहीं है—

यं पृथग्धर्मचरणाः पृथग्धर्मफलैषिणः।
पृथग्धर्मैः समर्चन्ति तस्मै धर्मात्मने नमः॥

सब अपने धर्माचरणमें स्वतन्त्र हैं। सब अपने धर्मका फल प्राप्त करनेमें स्वतन्त्र हैं। सब अपने अलग-अलग धर्मके द्वारा एक ही ईश्वरकी आराधना करते हैं। अपने-अपने कर्तव्य कर्ममें ईश्वरदृष्टिका अवतरण ही धर्म है। सबका धर्म एक है। धर्मके सम्बन्धमें इससे बड़ी उदारता क्या हो सकती है!

हिन्दू-समाजने धर्मकी जो रूपरेखा स्वीकार की है, वह किसी एक आचार्यके द्वारा प्रवर्तित नहीं है। वह किसी ऐतिहासिक कालकी संस्कृति नहीं है। वह किसी भौगोलिक सीमामें आवद्ध नहीं है। वह किसी एक वर्ग, जाति, सम्प्रदाय या पार्टीके लिए नहीं है। हम सम्पूर्ण विश्वके लिए एक धर्म स्वीकार करते हैं। गीताके इस श्लोकपर ध्यान दें—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

मानव अधिकारी है। अपना कर्म ही आराधना है। सम्पूर्ण विश्वका मूल मसाला ही, जो कि चेतन है, आराध्य देवता है। ऐसे धर्ममें भेद-भावके लिए स्थान कहाँ? मित्र अथवा सूर्यकी दृष्टिसे सम्पूर्ण प्राणियोंको देखो। जो संसारके किसी प्राणीका तिरस्कार करता है, उसपर ईश्वर कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकता। अभिमानी, भेददर्शी, द्वेषी और भूत-द्रोहीको कभी शान्ति नहीं मिल सकती। सब प्राणी ईश्वरके मन्दिर हैं। दान, सम्मान, मैत्री और आत्मदृष्टिसे सबको देखना चाहिए। ये हैं हमारे धर्मके उदार उद्गार, जिन्हें आप भागवतादि ग्रन्थोंमें अनायास ही प्राप्त कर सकते हैं। यह एकत्ववादी, अद्वयवादी, सर्वात्मवादी धर्म है।

आप जानते हैं भगवान् श्री आदिशंकराचार्यके जीवनकी वह घटना। जब वे काशीमें गंगास्नानके लिए पधार रहे थे। सामने कुत्तों सहित चाण्डाल खड़ा है। आचार्यने कहा— **'दूरं गच्छ'**— दूर हट जाओ। चाण्डालने कहा—'संन्यासि-शिरोमणि! ज्ञानीजी महाराज! आप देहको दूर हटाना चाहते हैं या आत्माको? क्या पाञ्चभौतिक अन्नमय देह पृथक्-पृथक् हैं अथवा साक्षी चेतन आत्मा पृथक्-पृथक् है? आप स्पष्ट बताइये—वेषका आदर है कि ज्ञानका? कोई 'दण्ड-मण्डित-कर' अथवा 'घृत-कुण्ड' होनेसे ही श्रेष्ठ हो जाता है?' आचार्यने चाण्डालके वचनकी गम्भीरता और तात्त्विकताको धारण किया। चाण्डालने अन्तमें कहा— 'तपोधन! मैंने तुम्हारी निष्ठामें जो दोष था, दूर कर दिया।' शंकरदिग्विजयकी इस कथाका मूल शंकराचार्य द्वारा रचित 'मनीषापञ्चक'में विद्यमान है। उन्होंने स्पष्ट गाया है कि जिसको ब्रह्मात्मैक्यबोध प्राप्त हो गया है, वह चाण्डाल हो या ब्राह्मण, मेरा गुरु है। हिन्दू-समाजका यह सिद्धान्त करामलकवत् प्रत्यक्ष है कि जाति और वेषकी अपेक्षा ज्ञानका आदर सर्वोपरि है।

कहनेका अभिप्राय यह कि हमारे आदि आचार्योंके जीवनमें ऐसा ज्ञान है, जिससे जगत् अभिन्न है। इतनी निरभिमानता है कि वे चाण्डालके वचनपर भी नत-मस्तक हो जाते हैं। वे किसीको हीन, घृणार्ह, द्वेष अथवा ईर्ष्याका पात्र नहीं समझते। हमारे महात्मा आपके

हृदयमें शान्ति, श्रद्धा आदि सद्गुणोंका आधान करते हैं। सौमनस्यको जगाते हैं। सौशिल्यकी प्रतिष्ठा करते हैं। अन्तर्ज्योतिके द्रष्टा हैं। समतामें उनकी निष्ठा है।

आपने सुना होगा—श्रीरामानुज-सम्प्रदायके मूलभूत आचार्योंमें सभी जातिके महापुरुष रहे हैं। गुरुदेवने मन्त्र-दीक्षा देकर श्रीरामानुजाचार्यसे कहा—'यह मन्त्र किसी औरको मत बताना। यह परम कल्याणकारी सर्वोत्तम मन्त्र है।' वे छतपर चढ़ गये। ऊँचे स्वरसे मन्त्रोच्चारण करने लगे। गुरुदेवने पूछा–'यह क्या ?' आचार्यने कहा–'गुरुदेव ! सुननेवाले प्राणियोंका कल्याण हो, मैं अकेले नरकमें चला जाऊँगा।' एक आचार-प्रधान आचार्यकी यह उदारता विश्वमें सदा स्मरणीय रहेगी।

किसीने महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवसे यह प्रश्न किया—'आप कौन हैं ?' उन्होंने स्पष्ट कहा—'मैं वर्णाश्रमका अभिमानी नहीं हूँ। मैं प्रभुका एक छोटा-सा सेवक हूँ।' आपको ज्ञात होगा कि महाप्रभुके सम्प्रदायमें सभी प्रकारके लोगोंका समावेश है। पापी और म्लेच्छ भी उनके अनुयायी हुए हैं। वस्तुतः भक्ति-सम्प्रदायोंने अत्यन्त उदारताके साथ प्राणियोंको कल्याणकी दीक्षा दी है। इन्होंने पशुपक्षियोंतकको भी वैष्णव बनाया है। सिद्धोंने भैंसेको भी क्या वेदोच्चारणके योग्य नहीं बना दिया ? सच्छास्त्रोंमें जाति-वर्ग-सम्प्रदाय-निरपेक्ष सर्वलोककल्याणकारी धर्मका ही निरूपण हुआ है।

हम धर्मके साथ कोई विशेषण या उपपद नहीं जोड़ते। धर्ममें भौगोलिक सीमा नहीं होती; जैसे यूरोपीय-धर्म, एशियाई-धर्म। ऐतिहासिक सीमा भी नहीं होती; जैसे आदिकालीन, मध्यकालीन। आचार्य, सम्प्रदाय अथवा जातिके कारण भी धर्ममें भेद नहीं होता। प्राचीन शास्त्रोंमें कहीं भी 'आर्य-धर्म', 'अनार्य-धर्म'—इस प्रकारके शब्द नहीं मिलते। वेद एवं तदनुवर्ती प्राचीन ग्रन्थोंमें 'हिन्दू' शब्दका प्रयोग भी नहीं मिलता। वेदका कहना है—**'धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा'**—सम्पूर्ण जगत्का आधार-स्तम्भ है धर्म। मीमांसा, वैशेषिक आदि दर्शन-ग्रन्थ बिना किसी परिच्छेदकके ही 'धर्म' शब्दका प्रयोग करते हैं। लोक, परलोक और परमार्थकी उपलब्धिके लिए धर्म ही साधन है। कर्ममें सार्वजनिक हितकी, समष्टिकी अथवा सर्वान्तर्यामी ईश्वरकी दृष्टि ही धर्म है। हमारे धर्ममें प्रान्तीयता, जातीयता, साम्प्रदायिकता आदिके कारण होनेवाले वैमनस्य, द्वेष अथवा घृणाके लिए किञ्चित् भी अवकाश नहीं है। यह दोष-दुर्गुणोंसे परित्राणके लिए सर्वोपरि कल्याणकारी रामबाण साधन है।

आज सम्पूर्ण विश्वमें जो उपद्रव, उपप्लवके बादल छाये हुए हैं, उसका कारण है—शिक्षागत दोष। सम्पूर्ण विश्वमें आज यह शिक्षा दी जा रही है कि सृष्टिके मूलमें कोई चेतन नहीं है। जड़ताका विकास और उससे उत्पन्न प्रकाश ही विश्व-व्यवस्थाका निर्वाह करनेमें क्षम है। समग्र विज्ञान ऐसी ही व्याख्या करनेमें संलग्न है। इस प्रकारकी शिक्षा हमारे होनहार विद्यार्थियोंकी बुद्धिको दिग्भ्रान्त कर रही है। आज देश-विदेश और प्रदेश-प्रदेशमें विद्यार्थियोंके अन्तर्देशमें विद्रोह प्रवेश कर रहा है। इण्डोनेशियामें राज्य-विप्लव हो गया। पाकिस्तानमें सैनिक-शासन हो गया। फ्रांस डगमगा रहा है। यदि विद्यार्थियोंको उचित शिक्षण नहीं दिया गया, उनके हृदयको आस्था-शून्य कर दिया गया तो क्या यह सम्भावना की जा सकती है कि वे विश्वमानवता अथवा राष्ट्रियताके प्रति उचित दृष्टिकोण रख सकेंगे ? अतः हमारी शिक्षामें ईश्वर,

धर्म, नैतिकता एवं सदाचारका समावेश होना ही चाहिए। हृदयकी पवित्रताके लिए, अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए, जिसके आधारपर ही सारी व्यवहार-शुद्धि निर्भर है, नितान्त आवश्यक है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस दिशामें साधुगण बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं।

एक बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि आज की परिस्थितिमें धनी और गरीबका अन्तर बढ़ रहा है। एक ओर पूँजी इकट्ठी हो रही है, दूसरी ओर खानेके लिए दानेके भी लाले पड़ रहे हैं। यदि गरीबोंके बच्चोंको बीमारीमें दवा नहीं मिलेगी, पहननेको कपड़ा नहीं मिलेगा, रहनेके लिए मकानकी व्यवस्था नहीं होगी, उनको शिक्षण और लौकिक उन्नति-प्रगतिकी सुविधा समान-रूपसे नहीं मिलेगी तो केवल उन्हें भावनाके बलपर धर्मात्मा बनाये रखनेमें सफलता नहीं मिल सकती। हमारे साधुओंका यह काम है और इस दिशामें उनके लिए अच्छा अवसर है कि वे धनियों और गरीबोंके बीचमें आवें। धनको हस्तान्तरित करनेमें सहयोग दें। गरीबोंके लिए विद्यालय, चिकित्सालय, रोजगार और लौकिक उन्नतिके अवसर उपस्थित करें। राजनीतिक नेता उन्हें बहकाकर गलत रास्तेपर न ले जायँ। ज्ञानी पुरुषको अदृष्टकी प्राप्तिके लिए वर्णाश्रम-धर्मके पालनकी आवश्यकता नहीं है। वह तो जिज्ञासा और ज्ञानकी उत्पत्तिके लिए है। शम-दमादि ज्ञानके निकट सहयोगी हैं। लौकिक कर्ममें ज्ञानीको केवल हितका अन्वय और अहितके व्यतिरेकका विचार करके ही अनिषिद्ध कर्म करना चाहिए। ज्ञानी पुरुष राज्य, सेनापतित्व, प्रशासन आदिके कार्य भी कर सकता है। यह शास्त्रका निर्णय है। साधुओंको इस ओर ध्यान देना चाहिए।

जो समझते हैं कि हमारे साधु निकम्मे हैं उन्हें साधुओंके बारेमें जानकारी नहीं है। साधुओंके द्वारा अनेक विद्यालय, औषधालय, स्कूल और कॉलेज चलाये जा रहे हैं। उनके द्वारा बाँध, सड़क आदिके निर्माण-कार्य भी किये जा रहे हैं। भारत साधु-समाज इन सबकी एक सूची तैयार करना चाहता है, जिससे वह जनताके सामने रखी जा सके।

साधु अपने-अपने सम्प्रदायके अनुसार अपने मन्त्रका जप करें। अपने इष्टका ध्यान करें, अपनी मर्यादाका पालन करें। भारत साधु-समाजका गठन धार्मिक सम्प्रदायके रूपमें नहीं, समाज-सेवा-संस्थानके रूपमें है। समाजके मञ्चपर संन्यासी, उदासी, वैष्णव, जैन, बौद्ध, सिक्ख और आर्य-समाजी सभी इकट्ठे हैं। यह मञ्च सब सम्प्रदायके साधुओंके लिए है, चाहे उनकी मान्यता कुछ भी क्यों न हो।

हिन्दू-समाजमें मूर्ति-पूजक सनातनी और मूर्ति-पूजा-विरोधी आर्य-समाजी दोनों ही हैं। यह शास्त्रार्थका मञ्च नहीं, सेवाका मञ्च है। महात्मा बुद्ध, महावीर, आचार्य शंकर आदि सभी हिन्दू हैं। गुरु नानक, स्वामी दयानन्द भी हिन्दू ही हैं। हिन्दू-समाजके सम्बन्धमें एक व्यापक दृष्टिकोण होना चाहिए। चोटीवाले और चोटीरहित, यज्ञोपवीती और अयज्ञोपवीती सभी हिन्दू हैं। वैदिक, अवैदिक, आस्तिक, नास्तिक सबका हिन्दू-समाजमें सन्निवेश है। संस्कृत, असंस्कृत दोनों हिन्दू हैं। मजहब आचार्य, संस्कार और पुस्तककी प्रधानतासे होते हैं। परन्तु इनको माननेवाले और न माननेवाले दोनों ही प्रकारके हिन्दू होते हैं। हिन्दू-समाजमें प्राकृत पृथ्वी, जल, अग्नि, वृक्ष आदिकी भी पूजा होती है और संस्कृत-

मूर्तियोंकी भी। निराकारका ध्यान कर सकते हैं, निर्गुणका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इतने व्यापक दृष्टिकोणवाले समाजमें किसी प्रकारकी संकीर्णता केवल अज्ञानमूलक ही हो सकती है। संगठन शक्ति है, विघटन निर्बलता। जो केवल हमारी तरह रहें, हमारे ढंगसे सोचें, वही हिन्दू हैं—ऐसा कहनेका अधिकार किसीको नहीं है। हिन्दू-समाज अत्यन्त उदीर्ण और विस्तीर्ण है। उसमें सबका सन्निवेश है। जो कोई मनुष्य सच्चे हृदयसे अपनेको हिन्दू मानता हो, वह अपने ढंगसे हिन्दू-समाजमें रह सकता है, उसको रोकनेका अधिकार न किसी आचार्यको है, न सरकारको। यह याद रखना चाहिए कि 'हिन्दू' जाति या सम्प्रदाय नहीं, समाज है। जिस समाजकी मूलभित्ति अद्वैत-सिद्धान्त हो, उसमें भेद-भावका क्या महत्त्व हो सकता है ! हिन्दू-समाज और भारत साधु-समाज दोनों ही सामाजिक दृष्टिकोण रखते हैं। इसलिए साधु-समाज यह प्रयत्न करेगा कि सबको समान सुविधा मिले, सबकी प्रगति हो। भारत साधु-समाज अपनी तपःपूत प्रज्ञा और शक्तिका उपयोग विश्वकी शान्ति और एकता बढ़ानेमें करेगा।

हम जानते हैं कि विश्वके लोग भारतवर्षको एक पिछड़ा देश मानते हैं। ठीक है—हम धन, सम्पत्ति और भोग-विलासमें उनसे पिछड़े हैं, परन्तु ज्ञान, उदारता आध्यात्मिकता, समदर्शिता, हृदयकी पवित्रता और अभेद-भावमें किसीसे पिछड़े हुए नहीं हैं। इस दृष्टिकोणसे तो हम सबसे आगे हैं। आज हम इस विषयमें सम्पूर्ण विश्वको पथप्रदर्शन दे सकते हैं। परन्तु इतना ही नहीं, आज प्रज्ञावान और निष्काम साधुओंका यह काम है कि वे भटकी हुई राजनीतिको भी सुमार्गपर लावें और जनताको तथा जननायकोंको लौकिक उन्नतिके लिए भी सही मार्ग बतावें; जिससे जनता कुपथमें न भटके। प्रज्ञावान, निष्पक्ष एवं शुद्धहृदय साधुओंके सिवाय यह काम और कौन कर सकता है ?

हमारा विश्वास है कि केवल भारतवर्षमें ही नहीं, सम्पूर्ण विश्वमें मानव-समाजके लिए आज साधुकी जितनी आवश्यकता है उतनी पहले कभी नहीं थी। आज साधु गाँव-गाँवमें, जंगल-जंगलमें, जनपद और नगरमें, देश और विदेशमें सर्वत्र फैल जायँ। ईश्वर और धर्मकी सच्ची शिक्षा, पवित्रता, समानता, मेल-मिलाप और निर्भयताकी सच्ची शिक्षा सबको दें। दुखीको सुख दें, अज्ञानीको ज्ञान दें और भयभीतको अभय बनावें। साधुओंके संगठन, हिन्दुओंकी एकता, प्रशासनको शुद्ध करने, मानवताको जगाने, राष्ट्रकी प्रतिष्ठा बढ़ाने और सत्यका साक्षात्कार करानेके लिए आज विश्वमें भारत साधु-समाजकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। साधुओंको गृहस्थोंका सहयोग लेनेमें हिचकिचाना नहीं चाहिए। गृहस्थाश्रम साधुकी जन्मभूमि है। साधुकी सम्पूर्ण शक्ति गृहस्थोंमें ही निहित है। साधु प्रज्ञाशक्ति है और गृहस्थ प्राणशक्ति। दोनों मिलकर काम करेंगे तो मार्ग सुगम और प्रगति सुलभ हो जायगी प्रज्ञा और प्राण दोनोंकी सम्मिलित शक्ति सर्वोपरि है। इसलिए साधु और गृहस्थ दोनों मिलकर यह काम करें—सफलता अवश्य मिलेगी। इसीमें मानव-समाजका, राष्ट्रका, हिन्दुत्वका, धर्मका उत्थान है। यही विश्वका मंगल और कल्याण है।

**सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।**
**सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ॥**

# महाभारतका नारायणीयोपाख्यान

श्रीव्रजवल्लभ द्विवेदी दर्शनाचार्य

महाभारतके शान्तिपर्वके अन्तर्वर्ती मोक्षधर्मपर्वके अन्तमें ३३४ अध्यायसे ३५१ अध्याय तक ( गीताप्रेस-संस्करण ) नारायणीयोपाख्यान उपवर्णित है। इस उपाख्यानने आजसे ५५ वर्ष पूर्व प्रसिद्ध भारतीय मनीषी डा० रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकरका ध्यान आकृष्ट किया था। अपने ग्रन्थ "वैष्णविज्म शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स"में इन्होंने इस उपाख्यानका समालोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया था। इस ग्रन्थका अब ( सन् १९६७में ) हिन्दी अनुवाद भी "वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत" शीर्षकसे वाराणसीसे प्रकाशित हो चुका है। प्रस्तुत निबन्धमें हम पाञ्चरात्र-संहिताओंके परिप्रेक्ष्यमें इसी उपाख्यानका सिंहावलोकन करना चाहते हैं।

यहाँ पर ३४९वें अध्यायमें सांख्य, योग, पाञ्चरात्र, वेद और पाशुपत मतोंका तथा उनके प्रवर्तक आचार्योंका उल्लेख मिलता है। उपाख्यानके आरम्भमें बताया गया है कि सर्वप्रथम इस धर्मका उपदेश नारायणने नारदको किया था। नर, नारायण, कृष्ण और हरिको यहाँ पर धर्मकी चार मूर्तियाँ माना गया है। यहाँ यह अवधेय है कि इस उपाख्यानमें एक-दो स्थलोंको छोड़कर सर्वत्र व्यूह शब्दके स्थान पर मूर्ति शब्दका प्रयोग किया गया है। यह धर्म सर्वप्रथम नारदको उपदिष्ट हुआ था, इसलिए यह सम्प्रदाय नारद-पाञ्चरात्रके नामसे भी प्रसिद्ध हो गया है। यद्यपि इस नामकी एक संहिता अलगसे भी उपलब्ध होती है, किन्तु परवर्तीकालमें प्रायः सभी संहिताओंके प्रारम्भमें "इति श्रीनारदपाञ्चरात्रे सात्वतसंहितायाम्" इस प्रकार पुष्पिका वाक्योंमें इसका विशेषणके रूपमें उल्लेख होने लगा था।

३४८वें अध्यायमें सांख्य, योग, वेद और पाञ्चरात्रको परस्पर उपकारक माना है। इनका सुन्दर समन्वय भगवद्गीतामें हुआ है। सांख्य, योग और उपनिषदोंका तो गीतामें स्पष्ट ही उपदेश मिलता है। इनके अतिरिक्त वहाँ पर शरणागति और प्रपत्ति आदिके सिद्धान्त, जो पाञ्चरात्रसे ही संबद्ध हैं, पाये जाते हैं। नारायणीयोपाख्यानमें भगवद्गीताका हरिगीताके

नामसे एकाधिक बार उल्लेख हुआ है और इस उपाख्यान पर स्पष्ट ही स्थल-स्थल पर गीताका प्रभाव परिलक्षित होता है, तथापि यह उपाख्यान प्रधानतः पाञ्चरात्र-सिद्धान्तोंका ही प्रतिपादक है।

पाञ्चरात्रका मुख्य सिद्धान्त चतुर्व्यूहवाद सर्वप्रथम यहीं देखनेको मिलता है। यहाँ पर एकव्यूह, द्विर्व्यूह, त्रिर्व्यूहका भी उल्लेख है, जोकि संभवतः चतुर्व्यूहवादके विकासक्रमको बतलाता है। ३३९वें अध्यायमें इसको महोपनिषद् कहा गया है और चतुर्वेदतुल्य इस शास्त्र-को 'पाञ्चरात्र'की संज्ञा दी गयी है। दूसरी जगह इसको सात्वत या ऐश्वरधर्म भी कहा गया है। यह धर्म अहिंसक था, किन्तु बौद्ध और जैन धर्मके समान वेदविरोधी नहीं था। इस धर्मके उपासक ऐकान्तिक कहे गये हैं, क्योंकि ये एकान्तभावसे नारायणकी उपासना करते हैं। गीताके समान यहाँ पर भी चार प्रकारके भक्त जनोंका उल्लेख है और उनमें एकान्तीको श्रेष्ठ माना गया है। इस एकान्ती भक्तको भगवान्का प्रियतर कहा गया है। यहाँ पर इनको सात्वत या भागवतके नामसे भी अभिहित किया गया है। एक जगह इनको पाञ्चकालज्ञ कहा गया है, क्योंकि ये पाँच यज्ञोंसे पाँच कालोंमें हरिकी आराधना करते हैं। पंचयज्ञ और पाञ्चकाल का यहाँ विशेष विवरण नहीं मिलता, किन्तु पाञ्चरात्र-संहिताओंमें इन पाञ्चकालों और अभि-गमन आदि पांच यज्ञोंका विशद वर्णन मिलता है। प्रसंगवश यहाँ पर दैशिक शब्दका प्रयोग भी हुआ है। पाञ्चरात्र-संहिताओंमें ही नहीं, प्रायः सभी आगम-ग्रन्थोंमें इस शब्दका साधककी अवस्थाविशेषके अर्थमें व्यापक प्रयोग हुआ है। पाञ्चरात्र-संहिताओं और विभिन्न वैष्णव-संप्रदायोंमें प्रसिद्ध "जिनं ते" स्तोत्रका प्रथम श्लोक भी यहाँ देखनेको मिलता है। संभवतः नारायणीयोपाख्यानकी रचनासे पूर्व ही इस स्तोत्रकी रचना हो चुकी थी। इस प्रकार नारायणीयोपाख्यानमें संक्षेपसे उसी धर्मका स्वरूप वर्णित है जो कि पाञ्चरात्र-संहिताओंमें पल्लवित रूपमें हमको देखनेको मिलता है। पाञ्चरात्र-संहिताओंमें दैव और पित्र्य कर्मकाण्डका अत्यन्त विस्तार है। नारायणीयोपाख्यानमें स्वयं नारायणने कहा है कि 'हमारी परमा प्रकृतिने, जो कि श्वेतद्वीपमें अवस्थित है, लोककल्याणके लिए यह मर्यादा बाँध दी है कि दैव और पित्र्य कर्म अवश्य ही करने चाहिए।' इसीलिए इसको यहाँ पर पदे-पदे प्रवृत्ति-धर्मके नामसे अभिहित किया गया है, जब कि वैदिक धर्मको निवृत्ति-मार्ग बताया है।

प्रायः प्रत्येक पाञ्चरात्र-संहितामें श्वेतद्वीपका उल्लेख है। प्रायः प्रत्येक संहिताका उपदेष्टा श्वेतद्वीपमें जाकर पाञ्चरात्र-धर्मका रहस्य प्राप्त करता है। नारायणीयोपाख्यानमें भी नारद श्वेतद्वीपमें जाकर भगवान्से उपदेश ग्रहण करते हैं। यहाँपर श्वेतद्वीपका और वहाँके निवासियोंका वर्णन मिलता है। क्षीरसागरके उत्तरमें श्वेतद्वीपकी स्थिति बतलायी गयी है। मेरु-पर्वतके उत्तर-पश्चिममें मेरुसे ३२ सहस्र योजन ऊपर यह स्थित है। इस द्वीपमें श्वेत वर्णके अथवा शुद्धसत्त्वप्रधान पुरुष निवास करते हैं। ये इन्द्रियोंसे रहित हैं, भोजन नहीं करते, हिलते-डुलते नहीं, इनके शरीरसे सुगन्ध निकलती रहती है, ये निष्पाप हैं, पापी पुरुष इनको देख नहीं सकते, इनके शरीरकी हड्डियाँ वज्रके समान मजबूत हैं, सब समान ऊँचाईके हैं, इनके शिर छातेके समान हैं, इनके साठ दाँत और आठ दाढ़े हैं, ये

एकान्तभावसे वासुदेवकी उपासनामें निरत रहते हैं। ३४३ वें अध्यायमें बदरिकाश्रममें तप करते हुए नर और नारायणको भी बहुत कुछ इसी रूपमें चित्रित किया गया हैं। पाञ्चरात्र-संहिताओंमें कहा गया है कि मुक्त जीव ही श्वेतद्वीपको प्राप्त कर सकते हैं। यहाँपर ( ३३९/२०में ) भी यही बात कही गयी है और दूसरी जगह बताया गया है कि इनका दर्शन भगवान्‌के दर्शनके समान है और एक दिन ये भगवान्‌में प्रवेश कर जायँगे।

३३५–३३७ अध्यायोंमें परम भागवत राजा वसु उपरिचरकी कथा वर्णित है। राजा नारायणका भक्त था। काम्य और नैमित्तिक सब अनुष्ठान वह सात्वत-विधिसे करता था। उसने अश्वमेध यज्ञ किया। उसमें पशु-हिंसा नहीं की गयी। वन्य ओषधियोंका देवताओंको भाग अर्पित किया गया। इसमें भगवान् नारायणने स्वयं आकर अपना भाग ग्रहण किया था। इस यागकी शतपथ-ब्राह्मणके पाञ्चरात्र-सत्रसे बहुत कुछ समानता है।

३३७ वें अध्यायमें राजा वसुका एक दूसरे ही रूपमें वर्णन मिलता है। देवों और ऋषियोंमें विवाद उठ खड़ा होता है कि यज्ञमें पशुसे यजन करना चाहिए अथवा धान्य-ओषधियोंसे। देवोंका प्रथम पक्ष था और ऋषियोंका द्वितीय। वे अपने विवादका निर्णय कराने राजा वसु उपरिचरके पास जाते हैं। स्वयं अहिंसक यागका अनुष्ठान करनेवाला वह राजा यहाँपर देवताओंके पक्षमें निर्णय करता है और ऋषियोंका कोपभाजन बनता है। ३३५ वें अध्यायके अन्तमें कहा गया है कि राजा वसुकी मृत्युके बाद इस धर्मका लोप हो जायगा। इस कथामें धर्मलोपका रहस्य निहित है।

नारायणीयोपाख्यानके विभिन्न अध्यायोंमें पाञ्चरात्रशास्त्रके उद्गमकी अनेक परम्पराएँ दी हुई हैं। ३४८ वें अध्यायके अन्तमें वही परम्परा दी गयी है, जो कि गीताके चौथे अध्यायके आरम्भमें है। वास्तवमें गीता और नारायणीयोपाख्यान एक ही भागवत-परम्पराके शास्त्र हैं। इन्हींमें प्रतिपादित सिद्धान्तोंका बादमें पाँचरात्र संहिताओंमें विकास हुआ। समयानुसार इनमें यत्र तत्र परिवर्तन भी हुआ है। तर्कपादके अन्तिम अधिकरणमें शंकराचार्यने पाञ्चरात्र-सिद्धान्तको उद्धृत कर उसका खण्डन किया है। उपलब्ध पाञ्चरात्र-संहिताओंमें ये सिद्धान्त दृष्टिगत नहीं होते। इसीलिए रामानुजाचार्यने शंकरप्रतिपादित पूर्वपक्षको सिद्धान्तरूपसे स्वीकार नहीं किया है। किन्तु ये सिद्धान्त नारायणीयोपाख्यानमें प्रतिपादित हैं।

गीताके उपदेशका जीवनमें सतत उपयोग—

# योगेश्वरकी अमृतवाणी

कु० ललिता सक्सेना एम० ए०

★

गीता मानव-जीवनके लिए रचनात्मक कार्यक्रम है। यह मानवधर्मका वह सुन्दर महाकाव्य है, जो जीवनको उत्साह, आनन्द और प्रेरणासे भर देता है।

'गीता, योगेश्वर श्रीकृष्णकी वंशीका वह स्वर है जिससे प्रत्येक ध्वनि, सत्य और सुन्दरतासे सम्पन्न आध्यात्मिक जीवनको जगानेवाली है। गीताका अमृत-सन्देश जीवनको स्फूर्ति और रूप देकर उभारता है। सत्यको सुन्दर बनाकर व्यवहारमें लाना और अनासक्त भावसे विश्वके न्यायाप्त भोग भोगते हुए सच्चिदानन्दसे दूर न जाना गीताके कर्मयोगकी विलक्षणता है।'

वस्तुतः संसारकी भूमिका ही कुरुक्षेत्रकी भूमिका है। यह संसार ही कुरुक्षेत्र है। मनुष्यमात्रका जीवन विविध प्रकारके द्वन्द्वोंसे आच्छादित है। प्रत्येक प्राणी कुरुक्षेत्रकी भूमि पर खड़ा है और उसके बाहर-भीतर निरन्तर युद्ध हो रहा है। युद्धके बिना आध्यात्मिक और भौतिक विजय प्राप्त करना दिवा-स्वप्नमात्र है। जीवन-युद्धमें मोहित, शिथिल हो धर्म छोड़नेवाले नर-नारी अर्जुनकी ही भाँति विषाद-ग्रस्त होकर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो उठते हैं। गीताका आरम्भ ही इसी 'अर्जुन-विषादयोग'को लेकर हुआ है। रणक्षेत्रमें अर्जुनकी मोहासक्ति उसको जड़ बना देती है। वह अधीर होकर प्रश्न करता है—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

अर्जुनकी पूर्ण शरणागतिसे प्रसन्न होकर ही श्रीकृष्णने गीतारूपी दिव्य अमृतवाणीकी वर्षा की। सर्वप्रथम उन्होंने अर्जुनको सांख्ययोगद्वारा जन्म-मरणकी आसक्तिसे छुड़ाकर विशुद्ध कर्मयोगकी शिक्षा दी।

कर्म करनेमें लाभ-हानि, जीवन-मरण, विजय-पराजय, सुख-दुःख कुछ भी क्यों न प्राप्त हो, किसी भी दशामें ध्येयसे विचलित होना अथवा अधीर और भयभीत होकर कर्मका गाण्डीव छोड़ देना महान पाप है। इस पापसे आत्मज्ञानी लोग बचे रहते हैं। आत्मज्ञानी पुरुष स्वधर्मसे विमुख या विचलित नहीं होते, साहस नहीं छोड़ते, वे जीवित रहते हैं तो प्रतिभाशाली गौरवसम्पन्न जीवनसे जीते हैं और कर्मयुद्धमें अपनी बलि देते हैं तो स्वर्गका सिंहासन प्राप्त करते हैं। गीतामें यही कर्मवाणी गूँज रही है—

'कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचनः' ।

"Action is thy duty; Reward is not thy concern." कर्म रहित जीवन मृत्यु है । गीताके इसी कर्मयोगका आश्रय लेकर स्वामी विवेकानन्दजीने कहा है ।

"We must always work, we cannot live a minute without work."

कर्म करनेके अधिकारका लाभ उठानेके लिए योगमें स्थित होना आवश्यक है । गीतामें कर्मसिद्धिके लिए प्रधान साधन बुद्धियोग ही है । बुद्धियोगको स्थिर करनेके लिए ही गीतामें स्थितप्रज्ञका वर्णन है ।

स्थित-प्रज्ञ स्वतन्त्र—जीवन्मुक्त पुरुष है । उसका मन आत्माके अखण्ड आनन्दकी तरङ्गोंपर खेलता है । कामनाके खिलौने उसे मोहित नहीं कर पाते । समुद्रमें जैसे नदियाँ समा जाती हैं उसी प्रकार स्थित-प्रज्ञमें संसारके सारे विषय समा जाते हैं । वह अखण्ड शान्ति, परमानन्द और ब्राह्मी स्थितिमें निवास करता है । आत्माके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान उसको अमरत्व प्रदान कर देता है ।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

"There is no death ! What seems so is Transition" सुख-दुःखकी धूप-छाँह उसको तप्त या शीतल नहीं करती । उसके लिए—

"सुखदुःखं समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ" की स्थिति रहती है ।

ज्ञानोपदेशके प्रभावसे अर्जुनकी मोहासक्ति कट गयी । कर्त्तव्यका बोध भी हो गया । किन्तु हृदयमें संशय अङ्कुरित हुआ । सबसे श्रेष्ठ मार्ग क्या है ? जिसके द्वारा जीवन मुक्त हो सके । गीताके द्वादश अध्यायमें श्रीकृष्णने पूर्ण भक्तियोगकी विशद व्याख्या की—

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥

एवम् अन्तमें सब सारों की सारभूतस्वरूपा श्रीगीतामें सारतत्त्व-निरूपण कर, सम्पूर्ण आत्मनिवेदनमें उपदेशकी परिसमाप्ति करके भक्तियोगको श्रेष्ठता प्रदान की । यथा—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।

अपरं च— सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

गीता वास्तवमें, कर्म, ज्ञान, एवम् भक्तिकी अनुपम त्रिवेणी है । जिसने इसके पावन स्नानसे अपने को पवित्र बना लिया उसका जीवन धन्य हो गया । इसी महत्ता का वर्णन भागवतकार एवं भगवदवतार स्वयं श्रीवेदव्यासजी ने महाभारतमें गीता का वर्णन करनेके बाद किया है—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ॥

अनन्यचिन्तनकी महिमा—

# श्रीकृष्णके निरन्तर स्मरणका फल

स्वामी कृष्णानन्द

★

गीतामें भगवान्‌की वाणी है कि—

**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।**
**मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ ( ९।१४ )**

अर्थात् 'हे अर्जुन ! तुम अपने मनको मुझमें लगा दो, मेरा भक्त हो जाओ मेरी पूजा करो और मुझको प्रणाम करो। इस प्रकार मुझमें युक्त होकर और मत्परायण रहकर तुम मुझको ही प्राप्त कर लोगे।'

इस एक ही श्लोकमें भगवान्‌ने चार साधन बताये। हम इन चारों साधनोंको 'साधन-चतुष्टय' कह सकते हैं। इन चारोंमें सर्वप्रथम साधन है—'मन्मना भव' अर्थात् तुम अपने मनको मुझ सच्चिदानन्द परमात्मामें इस तरह लगा दो कि निरन्तर मेरा ही स्मरण-चिन्तन होता रहे और इस असार संसारका एकदम विस्मरण हो जाय। यहाँ इसी साधनकी चर्चाकी जाती है।

परन्तु मन तो बड़ा ही चञ्चल है। स्वयं भगवान् कहते हैं—**'असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।'** ( गी० ६।३५ )। फिर इस चंचल मनसे तो निरन्तर भगवच्चिन्तन होना कठिन ही है। हाँ, इसके लिए दो उपाय हैं ( १ ) सत्संग ( २ ) और नाम-जप। जिस तरह सिपाहीको देखकर सरकारकी याद हो जाती है उसी तरह संतोंको देखकर भगवान्‌का स्मरण हो जाता है; क्योंकि संत-महात्मा परमात्माके ही प्रतिनिधि हैं प्रतिनिधि ही नहीं, भगवान्‌के स्वरूप हैं—

**ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।** ( गी० ७।१८ )

निरन्तर भगवच्चिन्तनके लिए नाम-जप एक सुगम और सर्वोच्च उपाय है। नाम और नामीमें अभेद है। इसलिए नाम लेते ही नामीका स्मरण हो जाता है। जैसे नीबूका नाम लेनेमात्रसे ही जीभमें पानी भर आता है। श्रीमद्‌गोस्वामी तुलसीदासजीने नाम-नामीका अभेद इस प्रकार बताया है—

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी॥
सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदयँ सनेह बिसेषे॥
देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ज्ञान नहिं नाम बिहीना॥

अतः भगवच्चिन्तनके लिए भगवन्नामका जप और सत्संग अधिकसे-अधिक अवश्य करना चाहिए। भगवान्का स्मरण श्रीमद्भागवतमें वर्णित नवधा भक्तिमेंसे एक है—**'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।'** केवल भगवत्स्मरणरूप एक साधनसे ही भगवत्प्राप्ति सुलभ कही गयी है—

**अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।**
**तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥** ( गी० ८।१४ )

गीतामें सुलभ शब्दका प्रयोग इसी स्थल पर एक ही बार किया गया है; और कहीं नहीं। इसीसे स्मरण-भक्तिकी अपार महिमा प्रकट होती है। गीताभरमें स्मरण-भक्तिकी महिमा बार-बार कही गयी है। जैसे—

१. **अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।**
**तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥** ( गी० ९।२२ )

अनन्यभावसे भगवच्चिन्तन करनेवाले उपासकोंके योग-क्षेमका वहन वे स्वयं करते हैं। कितना सुन्दर आश्वासन है? फिर भक्त लोग निश्चिन्त और निर्भीक क्यों नहीं होंगे?

२. **मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।**
**कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥**
**तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।**
**ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥** ( गी० १०।९।१० )

जो निरन्तर भगवान्का स्मरण-कीर्तन करते रहते हैं, उनको भगवान् 'बुद्धियोग' भी प्रदान करते हैं। यह इस श्लोकमें कहा गया है।

३. भगवान् स्वयं अर्जुनके प्रति अपनी आज्ञा देते हुए कहते हैं—

**मच्चित्तः सततं भव** ( गी० १८।५७ )

अर्थात् 'तुम निरन्तर मेरेमें चित्तवाला हो अथवा तुम निरन्तर मेरा ही स्मरण चिन्तन करो।' ऐसी आज्ञा वे पहले भी दे चुके हैं—

**तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च** ( गी० ८।७ )

अब फिर कहते हैं **'मच्चित्तः सततं भव।'**—तुम मुझमें निरन्तर चित्तवाला हो। अर्थात् तैलधारावत् खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते तुम मेरा ही चिन्तन किया करो।

इस भगवदाज्ञाको सुनकर पृथानन्दनके मनमें स्वभावतः एक शंका उत्पन्न हो गयी होगी। वह यह कि—

भगवान् बार-बार आज्ञा दे रहे हैं—"मेरा चिन्तन करो मेरा स्मरण करो" आखिर उनके स्मरण-चिन्तनका फल क्या निकलेगा? अन्तर्यामी प्रभुने इसका समाधान भी कर ही दिया और कहा—

**मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ॥** ( गी० १८।५८ )

'अर्जुन ! मुझमें चित्त लगानेपर तुम सारी कठिनाइयोंको पारकर जाओगे ।'

अर्जुन समझ गया कि विपत्ति-विनाशके लिए भगवत्स्मरण ही सर्वोच्च उपाय है। सती द्रौपदीने भी एक समय कहा था—

**ज्ञातं मया वसिष्ठेन पुरा गीतं महर्षिभिः ।**
**महत्यापदि प्राप्तायां स्मर्तव्यो भगवान् हरिः ॥**

'मैंने वसिष्ठजीसे ज्ञान प्राप्त किया था और महर्षियोंके मुखसे भी सुना था कि बड़ी भारी विपत्ति पड़नेपर भगवान्का ही स्मरण करना चाहिए ।' फिर क्या था !

अर्जुनने भगवान्की आज्ञा मान ली और कह दिया—

**करिष्ये वचनं तव ।**

भगवान्ने आज्ञा दी और अर्जुनने उसे शिरोधार्य किया। एक भगवत्स्मरणके प्रभावसे ही वह **'दुःखालयमशाश्वतम्'** संसारको पार कर गया और हमारे लिए भी रास्ता बता गया कि हम निरन्तर भगवच्चिन्तन करते रहें।

## चाह नहीं और चाह है !

( पद्य )

चाह नहीं है, मैं सुयशी हो,
स्वर्गलोकको पाऊँ—
चाह नहीं है, यह कि अन्तमें –
ब्रह्म-परमपद पाऊँ !
चाह यही साहित्य धर्मके
साधनमें मन रत हो—
दीन-हीन प्राणीकी सेवा
करनेका दृढ़ व्रत हो !

( दोहा )

विधि यदि मम अनुकूल हो,
तो दें यह वरदान।
नहीं किसीका मैं करूँ—
किसी भाँति अपमान ॥

—जगन्नारायणदेव शर्मा ( कविपुष्कर शास्त्री )

# 'श्रीकृष्ण-सन्देश'का सार्वभौम महत्व

श्रीबाबूराम द्विवेदी, एम० ए०, बीएड०, साहित्यरत्न

विश्व-साहित्यमें महापुरुषोंके काल-क्रमानुसार अमृतमय सन्देशोंका बड़ा महत्त्व है। संसारके प्रायः सभी सम्प्रदायोंने अपनी-अपनी धार्मिक रूढ़ियों, परम्पराओं और प्रवृत्तियोंका सम्बन्ध किसी न किसी रूपमें भगवान्, भगवदवतार, ईश्वरके दूत और खुदाके पैगम्बरके सन्देशोंसे जोड़ा है।

भारतीय आर्य अपने सम्पूर्ण धार्मिक वाङ्मयको ब्रह्म, भगवान् विष्णु, शंकर, श्रीराम, श्रीकृष्ण, महात्मा मनु, याज्ञवल्क्य, व्यास, गौतमबुद्ध, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, रामानन्द, सूर और तुलसी आदिके सन्देश, सूक्तियों एवं उपदेशोंका अक्षय भाण्डार मानते हैं।

ईसाइयोंका धार्मिक ग्रन्थ बाइबिल 'ईश्वरके दूत' ईसामसीहके सन्देशों और उपदेशोंका एक संकलन है। मुसलमानोंका धार्मिक ग्रन्थ 'कुरान' (आकाशके सातवें मंजिलसे उतरी हुई किताब) पृथ्वी पर पैदा हुए पैगम्बर मुहम्मद साहबके सन्देशोंसे ओत-प्रोत है।

'एकोऽहं बहु स्याम्' (मैं एक हूँ, अनेक हो जाऊँ) इस वैदिक सूक्तिमें निराकार-निर्गुण-ब्रह्मका सन्देश है जो सृष्टि-विस्तारका बोधक है। 'यतेमहि स्वराज्ये—ऋक् ५। ६६। ६ (हम स्वराज्यके लिए प्रयत्न करते रहें। कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः—यजुः ४०। २ (इस संसारमें कर्मोंको करते हुए ही सौ-वर्षों तक जीनेकी इच्छा करें)" आदि सूक्तियों द्वारा भारतीय प्राचीन मनीषियोंके भव्य आदर्शका पता चलता है।

'श्रीकृष्ण-सन्देश'के सार्वभौम अथ च सार्वकालिक महत्त्व पर विचार करनेके पूर्व हमें यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि भगवान् विष्णु, शंकर, राम और कृष्णमें कोई तात्त्विक भेद नहीं है। शिवपुराणमें स्वयं भगवान् शंकर कहते हैं—

ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये ह्यहम्।
उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम॥

[शिवपुराण ९। ५५-५६]

'मेरे हृदयमें विष्णु हैं और विष्णुके हृदयमें मैं हूँ। जो इन दोनोंमें अन्तर नहीं समझता, वही मुझे विशेष प्रिय है।' सनत्कुमारजी नारदजीसे कहते हैं—

स ब्रह्मा स शिवो विप्र स हरिः सैव देवराट्।
स सर्वरूपः सर्वाख्यः सोऽक्षरः परमः स्वराट्॥

[ नारद-पुराण पूर्व० ८१। १०७ ]

'हे विप्रवर ! वे श्रीकृष्ण ही ब्रह्मा हैं, वे ही शिव हैं, वे ही विष्णु हैं, वे ही देवराज इन्द्र हैं और वे ही सर्वरूप एवं सब नामवाले हैं। वे ही स्वयं प्रकाशमान अविनाशी परमात्मा हैं।' श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णके समन्वयात्मक सन्देशकी भव्यता यत्र-तत्र लक्षित होती है। विभूतियोग नामक दशम अध्यायमें भगवान्ने शिव, विष्णु, राम और इन्द्रको अपना स्वरूप ( विभूति ) बतलाकर अपने सर्वजनीन सन्देशके महत्त्वको अक्षुण्ण कर दिया है।

श्रीकृष्णके उक्त सन्देशसे सिद्ध होता है कि गीताका सबसे महत्त्वपूर्ण विषय है 'सर्ववाद' अथवा 'ब्रह्मवाद'की आधारशिलापर भिन्न-भिन्न मतों, विचारों और सिद्धान्तोंका समन्वयीकरण—'वसुधैव कुटुम्बकम्'की सार्वभौम विचारधाराकी स्थापना।

वर्तमान आणविक ( एटमिक ) युगमें विश्व भौतिकताकी ओर निर्बाध गतिसे बढ़ता जा रहा है। इस भौतिक विकासके विनाशकारी परिणामकी ओर इंगित करते हुए स्वामी विवेकानन्दने उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम चरणमें कहा था—'यदि विश्वको कोई आध्यात्मिक आधार नहीं मिला तो भौतिकवादी सभ्यता चूर-चूर हो जायेगी।'

[ कम्प्लीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द, भाग ३ पृष्ठ १५९ ]

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने जो सार्वभौम अथ च मानवतावादी सन्देश दिया है, उसमें आध्यात्मिक आधारका प्राचुर्य है, केवल एक इसी विशेषताके कारण भारत आज भी विश्व-गुरु होनेका दावा कर सकता है।

आज जब कि सम्पूर्ण विश्वमें एक राष्ट्र या धर्मका स्वार्थ या सिद्धान्त दूसरे राष्ट्र या धर्मके स्वार्थ या सिद्धान्तसे टकराता है—तब ऐसी विषम परिस्थितिमें गीतोक्त श्रीकृष्णसन्देशके आध्यात्मिक आधार ( समन्वयमूलक विचारधारा )की क्या उपयुक्तता है ?

भगवती गीता उक्त समस्याका समुचित समाधान निम्नांकित सूक्तिके आधार पर निकाल लेती है—

'भावाद्वैतं सदा कुर्यात् क्रियाद्वैतं न कर्हिचित्।'

अर्थात् भावनात्मक—आन्तरिक एकता अथ च आत्मौपम्यसिद्धान्तपर ही बल देना चाहिए। क्रियात्मक एकता ( बाह्य जातीय गठबन्धन ) कदापि संभव नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्णका सुन्दर भावात्मक एकतासम्बन्धी सन्देश है—

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ [ गी० ५। १८ ]

अर्थात् 'ज्ञानी पुरुष विद्या और विनयसे युक्त ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते तथा चाण्डालमें भी समभावसे देखनेवाले होते हैं।' निष्कर्षतः वे अपने सुखात्मक अथवा दुःखात्मक

भावको अन्य पुरुषके सुखात्मक या दुःखात्मक भावके सदृश मानते हैं। यही आत्मौपम्यदृष्टि या अध्यात्म-पक्ष-प्रधान विचार है।

उक्त सिद्धान्तका उत्तरोत्तर 'प्रसार' विश्ववन्धुत्वका परिचायक है। मुझे परम हर्ष है कि गीतोक्त श्रीकृष्ण-सन्देशके भव्य आदर्शको विश्वजनीन या सामान्योन्मुख बनानेमें 'श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ', मथुराके प्रगतिशील मासिक-पत्र 'श्रीकृष्ण-सन्देश'का योगदान अत्यन्त सामयिक और सर्वसुलभ सिद्ध होगा।

भगवान् श्रीकृष्णने श्रीमद्भागवतमें कहा है कि विश्वमें प्रत्येक मनुष्य एक दूसरेके प्रति ईर्ष्या, द्वेष, तिरस्कार और अहंकारपूर्ण व्यवहारका प्रदर्शन करता है। यही भावना पारस्परिक वैमनस्यके रूपमें परिणत होकर व्यापक संघर्ष और विग्रहकी पृष्ठभूमि बन जाती है। यदि सभी स्त्री-पुरुष निरन्तर भगवान्का चिन्तन, मनन और स्मरण करें तो कुछ ही समयमें उनके चित्तसे स्पर्धा, ईर्ष्या, तिरस्कार-अहंकार आदि दोष दूर हो जायँ—

नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात्।
स्पर्धासूयातिरस्काराः साहंकारा वियन्ति हि॥

[ श्रीमद्भागवत ११ । २९ । १५ ]

अहंकारी और परद्वेषी की कैसी दुर्गति होती है, इसे भगवान् के शब्दों में सुनिये—

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः॥
तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥

( गी० १६।१८-१९ )

'अहंकार, बल, घमंड, कामना, और क्रोधादिके वशीभूत हुए, दूसरोंकी निन्दा करनेवाले मनुष्य अपने तथा दूसरेके शरीरमें स्थित मुझ अन्तर्यामी ( भगवान् ) से द्वेष करते हैं। उन द्वेषी, पापाचारी, क्रूरकर्मी नराधमोंको मैं संसारमें बारंबार आसुरी योनियोंमें गिराता हूँ।'

करुणावरुणालय भगवान्ने जीवके निस्तार-हेतु स्पष्ट सन्देश दिया है कि अहंकार, बल, घमण्ड, काम, क्रोध और संग्रहको त्यागकर ममतारहित और शान्त हृदय हो ज्ञानी सच्चिदानन्द ब्रह्ममें लीन हो जाता है।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ ( गी० १८।५३ )

आज संसारमें धर्मकी अस्वाभाविक प्रवृत्ति वाह्याडम्बरके संबलसे युक्त होकर वर्ग-विभेद और राष्ट्र-विच्छेदकी ओर अग्रसर होती जा रही है। विश्वका कोई धर्म-ग्रन्थ आज इस जटिल समस्याका समाधान ढूढ़नेमें अपनेको समर्थ नहीं पा रहा है। केवल जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णके निम्नांकित गीतोक्त सन्देशमें उक्त समस्याका यथोचित समाधान प्राप्त होता है।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥ ( गी० ३।३५ )

भली-भाँति अनुष्ठित—आचरित अन्य धर्मसे गुणरहित भी अपना धर्म श्रेष्ठ है। स्वधर्ममें देह त्यागना कल्याणकर है। दूसरेका धर्म भय देनेवाला है।

गीताके अठारहवें अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है कि 'अपने स्वाभाविक कर्ममें लगा हुआ मनुष्य भगवत्प्राप्ति रूप परम सिद्धिको प्राप्त होता है'—

**स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।** ( गी० १८।४५ )

अपने स्वाभाविक धर्म ( कर्म ) के कल्याणकारी रूपका निर्देश करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

**श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।**
**स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥**

( श्रीमद्भगवद्गीता १८।४७ )

'भली-भाँति आचरित दूसरेके धर्मसे गुणरहित भी अपना धर्म श्रेष्ठ है, क्योंकि स्वभावसे नियत किये हुए स्वधर्म रूप कर्मको करता हुआ मनुष्य पापको नहीं प्राप्त होता।'

अतएव भगवान्‌का स्पष्ट आदेश ( सन्देश ) है कि दोषयुक्त भी स्वाभाविक ( प्रकृतिके अनुसार शास्त्रविधिसे निश्चित किये हुए वर्णाश्रम धर्म-सम्मत ) कर्मको नहीं त्यागना चाहिए—

**सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।** ( गी० १८।४८ )

श्रीमद्भगवद्गीता भगवान् श्रीकृष्णके अमृतमय वचनोंका अक्षय भाण्डार है। एक-एक सन्देशका सार्वभौम महत्त्व है।

समय-समयपर भारतीय संस्कृतिके संरक्षक और भगवान्‌के भक्त ईश्वरके सन्देशोंको, भौतिकताके पाशमें जकड़े हुए मानवके अन्तःकरणमें पहुँचानेके लिए प्रयास करते रहे हैं। आदि शंकराचार्यने गीतोक्त 'ईश्वरवाद'के अमोघ अस्त्र द्वारा बौद्धोंके अनीश्वरवादका खण्डन करके 'श्रीकृष्ण-सन्देश'को अक्षुण्ण रखा। लोकमान्य बालगंगाधर तिलकने 'श्रीमद्भगवद्-गीता-रहस्य' अथवा 'कर्मयोगशास्त्र'द्वारा 'श्रीकृष्ण-सन्देश'के लोक-संग्रहात्मक पक्षको समाजोन्मुख किया। महात्मा गाँधीने 'अनासक्तियोग' द्वारा गीताके 'विश्वबन्धुत्व'को विश्वोन्मुख किया। भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन्‌ने गीताके दार्शनिक विवेचन द्वारा समस्त विश्वको गीता-दर्शनसे परिचित कराया।

भारतीय संस्कृतिके कर्णधार ब्रह्मलीन महामना मदनमोहन मालवीय तथा श्री जय-दयालजी गोयन्दकाने गीतोक्त ज्ञान, भक्ति और कर्मके समन्वयका सन्देश विश्वके कोने-कोनेमें पहुँचाया।

परन्तु इधर 'श्रीकृष्ण-सन्देश'की संसारोन्मुख गतिमें त्वरा उत्पन्न करनेके विचारसे प्रेरित होकर ब्रह्मलीन श्रीजुगलकिशोर बिड़लाने श्रीकृष्ण-जन्मस्थान मथुरासे 'श्रीकृष्ण-सन्देश'का जो प्रवर्तन किया, वह उत्तरोत्तर भारतीय संस्कृतिकी रक्षाकी ओर अग्रसर होता रहे। यही भगवान्‌से प्रार्थना है।

●

# भगवान् श्रीकृष्णकी कूटनीति

*श्रीनागेश्वर सिंह 'शशीन्द्र' विद्यालंकार*

★

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ॥

गीताके उपदेशक, महाभारतके महान् नायक श्रीकृष्ण-जैसा प्रचंड पराक्रमी व्यक्ति मानवताके इतिहासमें देखनेको नहीं मिलता। वे एक महान् ऐतिहासिक योद्धा थे। सिकन्दर, नेपोलियन, हिटलर, मुसोलिनी, नेलशन एवं चर्चिल भी योद्धा हुए, पर श्रीकृष्ण-स्वरूपके सामने ये लोग सूरजके सामने दीपकके समान लगते हैं। इन योद्धाओंका अंततोगत्वा पतन हुआ, पर श्रीकृष्ण अपने प्रत्येक कार्यमें सफल हुए। श्रीकृष्ण भी इन योद्धाओंकी तरह महान् तानाशाह थे। उनमें और श्रीकृष्णमें बड़ा अन्तर है। जिस समय श्रीकृष्ण इस धरती पर आये, उस समय भारतवर्षको एक ऐसे ही महान् तानाशाहकी आवश्यकता थी। उस समय भारतमें ऐसे मदमत्त तानाशाह थे जो परंपरागत भारतके मानवीय जीवनको छिन्न-भिन्न कर अपना रंग चढ़ा रहे थे। राष्ट्रशक्तिके पोषणका स्थान प्रतिस्पर्धाने ले लिया था। स्वार्थ-मदमें मतवाले आसुर भावनावाले राजा, राष्ट्रदेवताकी भक्ति और पूजाके स्थानपर अपनी भक्ति और पूजा चाह रहे थे। ऐसे अंधकारपूर्ण समयमें समस्त राष्ट्रकी धारणाके लिए एक महान् शक्तिशाली तानाशाह, दण्डधरकी आवश्यकता थी। इसी समय भारतके क्षितिजपर श्रीकृष्णचन्द्रका उदय हुआ था।

श्रीकृष्ण एक कुशल राजनेताके साथ ही एक सफल युद्धनायक भी थे। उनकी कूटनीति तो लोगोंको हैरतमें डाल देती है। अपने जीवनमें उन्होंने न जाने कितने कूट-युद्ध किये थे। अर्जुन, भीष्म, द्रोण एवं युधिष्ठिर आदिको युद्धमें बलात् अग्रसर करना भी इन्हींके कूटनीतिक कार्योंमें एक था। यहाँ उनकी कूटनीतिके कुछ प्रसंग उपस्थित हैं।

**कालयवनका पतन :**

कालयवनने श्रीकृष्णको जब युद्धके लिए ललकारा और उनका पीछा किया तो श्रीकृष्ण भी भाग निकले। इस तरह भागते-भागते वे एक गुफामें जा छिपे। कालयवन भी उनका पीछा कर रहा था। अतः उसने जब मन ही मन यह सोचा कि श्रीकृष्ण मेरे भयसे डरकर भाग रहा है फिर ऐसा मौका हाथ नहीं आयेगा अतः इसका अभी ही क्यों न वध कर डालूँ। ऐसा सोचकर वह भी गुफामें श्रीकृष्णको मारनेके लिए जा पहुँचा। इधर श्रीकृष्ण भी सतर्क होकर

उसकी राह देख रहे थे। श्रीकृष्ण कालयवनसे आँख बचाकर गुफाके भीतरी भागमें चले आये। वहाँ सोये हुए मुचुकुन्द मुनिके पास पहुँचकर अपना उपवस्त्र उन्हींके शरीर पर डाल दिया जिससे कालयवन यह समझे कि श्रीकृष्ण ही छिपकर यहाँ सो गये हैं। कालयवन भी उन्हें खोजता हुआ वहीं पहुँच गया और देखा कि सामने ही श्रीकृष्णका उपवस्त्र फैला हुआ है। उसने सोचा कि श्रीकृष्णको जगाकर शीघ्र ही मार डालना चाहिए। फिर क्या था ज्यों ही उसने श्रीकृष्णके भ्रममें मुचुकुन्दमुनिको जगाया त्यों ही मुनिकी क्रोधाग्नि भभक उठी और वह वहीं भस्म हो गया।

**अपलोचनका वध :**

श्रीकृष्ण वेप वदलनेमें भी वड़े चतुर थे। अपने योगके प्रभावसे वे ऐसा करनेमें सक्षम थे। जरासंध और कंसको मारनेके लिए उन्होंने कितने ही रूप धारण किये। पाताल-लोकका स्वामी महावली असुर अपलोचन भी श्रीकृष्णका प्रवल शत्रु था। उसने एक दिन मय दानवसे मिलकर श्रीकृष्णसे वदला लेनेका उपाय पूछा। मय दानवने भी एक सुन्दर वक्सेका निर्माण कर अपलोचनको दिया और कहा—जैसे भी हो इसमें श्रीकृष्णको वन्दकर मार डालना। इसपर अपलोचन वड़ा खुश हुआ और उसी समय वह उस वक्सेके साथ द्वारका रवाना हुआ। श्रीकृष्णको इस वातका पता पहले ही लग गया और उस दैत्यको छलसे ही मारनेके उद्देश्यसे वे रास्तेमें एक ब्राह्मणका वेष वनाकर अपलोचनके पास आये। अपलोचनसे मिलते ही श्रीकृष्णने कहा—'अपलोचन मुझे मालूम है कि तुम कहाँ जा रहे हो। चलो अच्छा हुआ हम भी तुम्हारे साथ मिल गये। श्रीकृष्णने मेरे पिताको भी मारा था। मैं भी उससे वदला लेनेकी वात सोच रहा था। क्यों न हम दोनों मिलकर उसे मार डालें?' ब्राह्मण-वेपधारी श्रीकृष्णकी वात सुनकर अपलोचनको भी सहसा विश्वास हो गया और उसने भी वक्सेमें वन्दकर श्रीकृष्णको मार डालनेकी सारी कहानी कह सुनायी। इसपर ब्राह्मण-वेषधारी श्रीकृष्णने उससे कहा—'पर मित्र, तुमने श्रीकृष्णको नहीं देखा है, फिर वह इस छोटेसे वक्से में कैसे आ सकेगा?' हाँ मैंने उसे अवश्य देखा है वह तुम्हारी ही तरह है। यदि तुम इस वक्सेमें आ जाओगे तो श्रीकृष्ण भी निश्चित है कि इस वक्सेमें समा सकेगा। क्यों न तुम इसकी परीक्षा ले लो। इस पर अपलोचन वक्सेके अन्दर घुसकर देखने लगा। तभी कृष्णने दरवाजा वन्द कर दिया और अपने पूर्व रूपको प्रकट कर उसे दिखा दिया। अपलोचन उस रूपको देखते ही देखते मर गया।

**दुर्योधनकी वंचना :**

दुर्योधनकी माता गांधारीने अपने पति धृतराष्ट्रके अंधे होनेके कारण अपनी आँखोंपर पट्टी वाँध ली थी और महान् व्रत एवं कठिन तपस्यासे ऐसी शक्ति प्राप्त कर ली कि उनके देखने मात्रसे किसी भी मनुष्यका शरीर लोहे के समान दुर्भेद्य वन जाय।

गांधारीने सोचा कि इस समय कौरवों और पांडवोंके वीच भयंकर द्वेपाग्नि प्रज्वलित है। जो शीघ्र ही युद्धका रूप धारण करेगी। ऐसा न हो कि इस युद्धमें मेरा प्यारा पुत्र दुर्योधन मार डाला जाय। इस अनजान आशंकासे भयभीत होकर उसने दुर्योधनसे कहा—

'बेटा एक बार मेरे सामने नग्न होकर आओ।' माँ की बात सुनकर पहले तो दुर्योधन बहुत घबराया कि माँने मुझे ऐसी आज्ञा क्यों दी है। फिर कुछ सोचकर माँके सामने जानेको तैयार हो गया। श्रीकृष्णको किसी प्रकार गांधारीकी बातोंका पता चल गया। वे दुर्योधनके पास वेष बदलकर गये और तरह-तरहसे समझाने लगे। उन्होंने कहा—'यद्यपि माता-पिता एवं गुरुजनोंकी आज्ञा माननी चाहिए, चाहे वह जैसी भी हो, पर यह भी कोई आज्ञा है कि नंगे होकर माँके पास जाओ। कोई व्यक्ति सुन ले तो हँस दे। अतः माँके पास जानेके पूर्व कमसे-कम अपने गुप्तांगोंको जरूर ढँक लो। इससे शास्त्रोंकी बातें भी रह जायगी और तुम्हारी माँका वचन भी। उनकी बातोंमें आकर वह अपने गुप्तांगोंको ढँककर माताके पास जा खड़ा हुआ। माँने पूछा—बेटा दुर्योधन आ गये। इसपर दुर्योधनने कहा—'हाँ।' दुर्योधनके उत्तर पर माँने अपनी आँखें खोल दीं। फिर क्या था उसका सारा शरीर लोहेका बन गया, पर जो अंग ढँका रह गया था, उसपर उसकी दृष्टिका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।' इसपर माँने कहा—'मैं जानती हूँ बेटा, यह उपाय तुझे श्रीकृष्णने बताया है क्योंकि वह तेरा शत्रु और पांडवोंका मित्र है। पर मेरे चाहनेसे क्या होगा? तुम इस युद्धमें भीमकी गदासे निश्चित ही मारे जाओगे।'

इस प्रकार महाभारतमें ऐसे अनेक आख्यान हैं जिसमें श्रीकृष्णकी कूटनीतिकी बात है। और उसी नीतिके बलसे कितने ही महारथियोंका संहार हुआ। अतः आजकी स्थितिमें भारतराष्ट्रको धारण करनेके लिए श्रीकृष्ण-जैसे राष्ट्रनायक एवं युद्धनेताकी आवश्यकता है। महाभारत-युद्धमें उनकी-सी सफलता शायद ही किसीको मिली हो। वे भारत-राष्ट्रके सच्चे योद्धा और नेताओंके भी नेता थे। समाजकी किसी भी अवस्थामें वे उपयुक्त नेता हैं। हमारे सच्चे भगवान् हैं। महर्षि वेदव्यासके शब्दोंमें हमारा भी उन जगद्धित कृष्णको अनेक बार नमस्कार है :—

**नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।**
**जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥**

---

## पर्व-सूचना

श्रावण मासके कुछ महत्त्वपूर्ण पर्वोंकी सूचनामात्र दी जा रही है। स्थानाभावके कारण विशेष विवरण नहीं दिया जाता है।

१. श्रावण शुक्ल द्वितीया शुक्रवारको **पन्द्रह अगस्त - स्वतन्त्रता-दिवस** है।
२. श्रावण शुक्ल पञ्चमी सोमवार दिनाङ्क १८ अगस्त सन् १९६९ को **नागपञ्चमी** है।
३. श्रावण शुक्ल सप्तमी बुद्धवार २० अगस्त सन् १९६९ को **तुलसी जयन्ती** है।
४. श्रावण शुक्ल पूर्णिमा बुद्धवार २६ अगस्त सन् १९६९ को श्रावणी महापर्व तथा रक्षाबन्धन ( राखी ) का पर्व है।

अनासक्तियोगके पालनकी आवश्यकता—

# जीवन और मृत्यु

श्रीताराशंकर वैद्य

शरीर - प्राणयोरेव संयोगादायुरुच्यते ।
कालेन तद्वियोगाच्च पञ्चत्वं कथ्यते बुधैः ॥ ( शार्ङ्गधर )

शरीर एवं प्राणके संयोगको आयु तथा समयपर उनके वियोगका नाम मृत्यु है। यह जीवन और मृत्युकी स्पष्ट परिभाषा है। जिसे सभी व्यक्ति जानते हैं। और, यह भी सभी जानते हैं कि जीवनका प्रारम्भ गर्भस्थिति और पर्यवसान मृत्युसे होता है। जीवनका प्रारम्भ भूतकालीन वस्तु है। इसलिए उसमें विवशता है। विवशतामें विचारणा व्यर्थ है। पर्यवसान आगे है; उसकी सुधि लेना उचित है।

पर्यवसान इच्छानुसार हो सकता है—भीष्म पितामहका हुआ है पर भीष्म-प्रतिज्ञ अब कोई नहीं रहा है; इसलिए पर्यवसानमें स्वेच्छाको नहीं ईश्वरेच्छाको मान्यता मिल गयी है। हम भी इसके विपरीत नहीं जाना चाहते पर पर्यवसान सुखद हो, यही कामना है। कामनाकी पूर्तिके लिए पर्यवसानकी सम्प्राप्ति जानना आवश्यक है। जिससे उसके मार्गपर चलनेमें सुविधा हो। इसे जाननेके लिए गीताजीमें उल्लिखित भगवान् श्रीकृष्णके निम्नलिखित वचनोंपर ध्यान दें :—

सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ।
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ॥
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

आसक्तिसे इष्ट-प्राप्तिकी कामना होती है। कामनाकी अपूर्तिसे क्रोध होता है। क्रोध आनेपर चित्त मोह-ग्रस्त हो जाता है। मोहसे स्मृतिभ्रंश और तत्पश्चात् बुद्धिनाश होता है। परिणामतः मृत्यु हो जाती है।

उपर्युक्त बातोंका शरीरपर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। एक वैद्य जानता है कि लोभसे मुँहमें पानी आ जाता है। कफ प्रकुपित होता है। क्रोधसे आँखें लाल हो जातीहैं। पित्त प्रकुपित होता है। स्मृतिभ्रंश वात-प्रकोपका प्रबल लक्षण है। इस प्रकार मनुष्यकी अपनी ही त्रुटिसे त्रिदोष या सन्निपातका प्रकोप शरीरमें हो जाता है और मानव रोगग्रस्त होकर पर्यवसित हो जाता है।

इसीलिए मनुष्यको मृत्युसे बचानेके लिए भगवान्ने 'अनासक्तियोग' ( श्रीगीता )का उपदेश किया। इसका पूर्णतया पालन मृत्युसे उबारता है। अधिकतम पालन सुखायुको देता है। सुखायुकी प्राप्तिके लिए आसक्तिसे विरक्ति अपेक्षित है। प्रस्तुत सभी कर्तव्योंका पालन करना है, पर अनासक्त होकर—ईश्वरेच्छा समझकर। अनासक्तको क्रमशः काम-क्रोध-मोह-स्मृति-भ्रम और बुद्धिनाश नहीं पीड़ित कर सकता। परिणामतः उसकी मृत्यु नहीं हो सकती। यह विचारकर मृत्युञ्जय बन जाइये। यदि नहीं बन सकते तो कम-से-कम आसक्ति रखिये और हँसते-हँसते अधिकतम सुखायु प्राप्त कीजिये। ●

पूजोपचारोंमें नमस्कारकी प्रधानता—

# सुगमतम आराधना

☆ श्रीजानकीनाथ शर्मा

अभिधानचिन्तामणि, मेदिनी तथा विश्वप्रकाशादि कोशोंमें आराधना शब्दके ५-६ अर्थ बतलाये गये हैं, जिनमें रन्धन, प्राप्ति, साधन, तोषणादि मुख्य हैं। उदाहरणार्थ **को लोकमाराधयितुं समर्थः एवं स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि। आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥** ( उत्तररामचरित १।१२ ) आदिमें 'आराधना'का अर्थ—'तुष्ट करना'—प्रसन्न करना (make to pleased, to entertain) इत्यादि ही हैं। **इदं तु ते भक्तिनम्रं सतामाराधनं वपुः** ( कुमारसंभव ६।७३ ) आदिमें भी यही अर्थ है। पर वहीं ( १।५४ ) **आराधनायास्य सखी समेताम्** में आराधनाका अर्थ पूजा, उपासना, साधना ( Worshippis propitiation ) आदि हैं। इसी प्रकार—

**इच्छित फल विनु शिव आराधे। लहै न कोटि जोग-जप साधे ॥**

( रामचरितमानस, बालकाण्ड ७०।८ )

तथा—**अवसि होइ सिधि, साहस फलै सुसाधन।**
**कोटि कलपतरु सरिस संभु - आराधन ॥**

( पार्वतीमंगल २२ सा. स. प्रयाग गी० प्रेसमें २० )

इत्यादि स्थलोंपर प्रथममें साधना पूजा एवं द्वितीयमें तोषण अर्थ है। यहाँ हम साधन-पूजन अर्थको लक्ष्यकर कुछ निवेदन करेंगे। ईश्वर, देवता, मुनि-महात्मा आदि के प्रीत्यर्थ साधन ही आराधना है। इसके ही भेद अन्य शब्दोंमें उपकरण, उपचार आदि कहलाते हैं। यद्यपि साधना-आराधना-उपासनाके सैकड़ों उपचार हैं, तथापि उनमें नमस्कार ही सर्वप्रधान एवं सुगमतम है। यदि ५, १६, २४, ४८, ६४ एवं १०८ उपचारोंमें से छाँटकर कोई एक ही रखना हो तो नमस्कार ही लेना होगा; क्योंकि इसमें सर्वसमर्पणका भाव निहित होता है। भगवान्के लिए किया गया एक ही नमस्कार दश अश्वमेधयज्ञोंके तुल्य माना गया है। **एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रमाणो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।** इस प्रणामके अभिवादनसे लेकर पञ्चाङ्ग, अष्टाङ्ग आदि अनेक भेद हैं। वृद्धाभिवादनशीलके लिए आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि कही गयी है।

**अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।**
**चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥** ( मनु० २।४९ )

मार्कण्डेयजीकी कुल सात वर्षकी परिमित आयु, सप्तर्षियोंके अभिवादनसे सात कल्पकी बन गयी। जगद्गुरु भारतकी यह देन पहले विश्वमें संस्कृत रूपमें थी। पर अब सर्वत्र वह विकृत हो गयी। आस्ट्रेलियाकी निग्रो जाति नाक मिलाकर अभिवादन करने लगी। इस्लामी सिजदा भारतीय अभिवादनका ही रूपान्तर है। रूसका वर्गवादी नमस्कार हाथ फेरकर और अमेरिकामें सिरपर हाथ जोड़कर किया जाता है। प्रसिद्ध लेखक सिडका लेख इसपर प्रसिद्ध है। 'इन्साइक्लोपीडिया ऑफ एथिक्स ऐण्ड रिलिजन'में इस पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। ●

# हिन्दीमें

**'गीता-प्रबन्ध'के साथ ही श्रीअरविन्दका अन्य साहित्य**

●

युग-युग का भारत मृत नहीं हुआ है, न उसने अपनी अन्तिम सर्जन-क्षम-वाणी ही उच्चरित की है; वह जीवित है और उसे अपने लिए तथा मानव समष्टिके लिए अभी भी कुछ करना है। —*श्रीअरविन्द*

**क्या गीतामें ही आश्वासनका यह नया उद्घोष नहीं है ?**

**श्रीअरविन्दके सम्पूर्ण गद्य-साहित्यका हिन्दी अनुवाद**

**२० खण्डोंमें**

●

## ( एक आवश्यक सूचना )

श्रीअरविन्द 'साहित्यके दो खण्ड' ( १ ) भारतीय संस्कृतिके आधार तथा ( २ ) गीता प्रवन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। अगले दो खण्ड आगामो १५ अगस्त तक प्रकाशित हो जानेकी सम्भावना है। सारे साहित्यमें वेद-रहस्य, दिव्य जीवन, योग समन्वय आदि महान् ग्रंथ उपर्युक्त प्रकाशित ग्रन्थोंके अतिरिक्त होंगे जिनमें योग और साहित्यपर श्रीअरविन्दके पत्र, राजनीतिसे सम्बन्धित व्याख्यान और लेख, वेद मन्त्रोंके अनुवाद आदि भी सम्मिलित हैं।

प्रकाशनके पूर्व ग्राहकोंके लिए मूल्य २००.०० तथा बादमें बढ़ाकर ३० जून १९६९ तकके लिए २२५.०० रखा गया था। यह अवधि ३१ जुलाईतक बढ़ा दी गयी है। १ अगस्तसे प्रकाशनसे पूर्व सदस्यताका मूल्य २५०.०० रु० हो जायँगे। संग्रहके लिए आर्डर भेजनेवाले सज्जन ३१ जुलाई तक २२५.०० रुपये भेजकर सदस्य वन सकते हैं।

एक अनुपम साहित्य-निधिके रूपमें आपके पास सञ्चित होगा श्रीअरविन्दके वीचमें प्रभापूर्ण विचारोंका आगार, प्रेरणाका जीवन्त स्रोत।

- सम्पूर्ण संग्रह रु० ३२५.००
- प्रकाशनके पूर्व ग्राहकोंके लिए २५०.०० १ अगस्त १९६९ के बाद।

**विशेप जानकारीके लिए लिखें :—**

**श्रीअरविन्द वुक्स डिस्ट्रिब्यूशन एजेंसी पांडिचेरी—२**

**श्रीअरविन्द सोसायटी प्रकाशन**

शुभकामनाओं सहित—

## डालमिया सिमेंट (भारत) लिमिटेड

### डालमियापुरम् ( तमिलनाडु )

"राकफोर्ट" मार्का डालमिया पोर्टलैण्ड एवं पोज़ोलाना सिमेंट तथा डालमिया रिफ्रैक्टरीज़ के निर्माता।

## उड़ीशा सिमेंट लिमिटेड

### राजगंगापुर ( उड़ीशा राज्य )

"कोणार्क" मार्का डालमिया पोर्टलैण्ड एवं पोजोलाना सिमेंट, हर प्रकार और आकारकी रिफ्रैक्टरीज, आर० सी० सी० स्पन पाइप्स तथा प्रीस्ट्रेस्ड कंक्रीट सामानके निर्माता।

मुख्य कार्यालय :

## ४, सिंधिया हाउस,

### नई दिल्ली
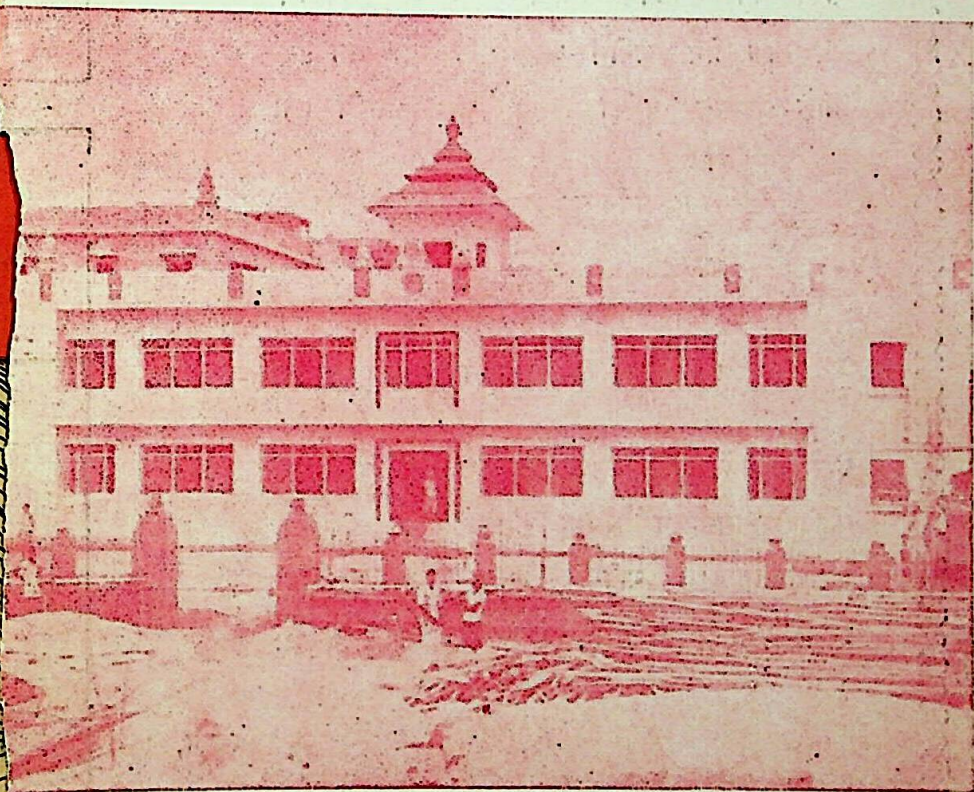
श्रीकृष्ण जन्म-भूमि-अतिथिशाला

# श्रीकृष्णके प्रेमियोंसे--

हरिभक्त भावुक सज्जनो ! लो नाम सादर कृष्णका,
करते रहो मन-प्राणसे अविराम आदर कृष्णका।
श्रीकृष्णके प्रेमी जनो ! यह आपका ही पत्र है,
श्रीकृष्ण-सम्मत धर्मका इसमें कथन सर्वत्र है॥

शुभ आर्य-संस्कृति-सभ्यता, अध्यात्मका वर्णन यहाँ,
श्रीकृष्णके उपदेशका होता समाकर्णन यहाँ।
इसमें निरूपित लोकहितका मार्ग अनुसर्तव्य है,
इस पत्रका प्रचलन-प्रसारण आपका कर्तव्य है॥

इसमें मिलेंगे, प्रेरणाप्रद लेख-कविता आपको,
यह मोह-तम-भंजन जँचेगा पत्र - सविता आपको।
अध्यात्म-ज्ञानामृत यही है, भक्ति-मधुमेवा यही,
इसका प्रचारण धर्म है, श्रीकृष्णको सेवा यही॥

यदि चाहते हैं सर्वविध उत्थान अपने देशका,
तो कीजिये विस्तार नित श्रीकृष्णके संदेशका।
ग्राहक स्वयं वन औरको भी आप नित्य वनाइये,
श्रीकृष्ण-सेवाका रुचिर फल आप इससे पाइये॥

—रमेशदत्त पाण्डेय

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुराके लिए देवधर शर्मा द्वारा
आनन्द-कानन प्रेस, ढुण्ढिराज, वाराणसी–१
में मुद्रित एवं प्रकाशित।